सामाजिक अध्ययन

कक्षा-8

मध्य प्रदेश पाठ्य पुस्तक निगम

म. प्र. पाठ्यपुस्तक निगम
विद्या विनय विवेक
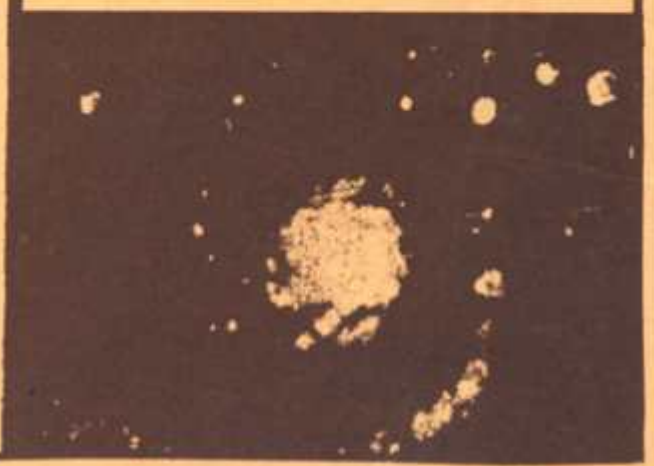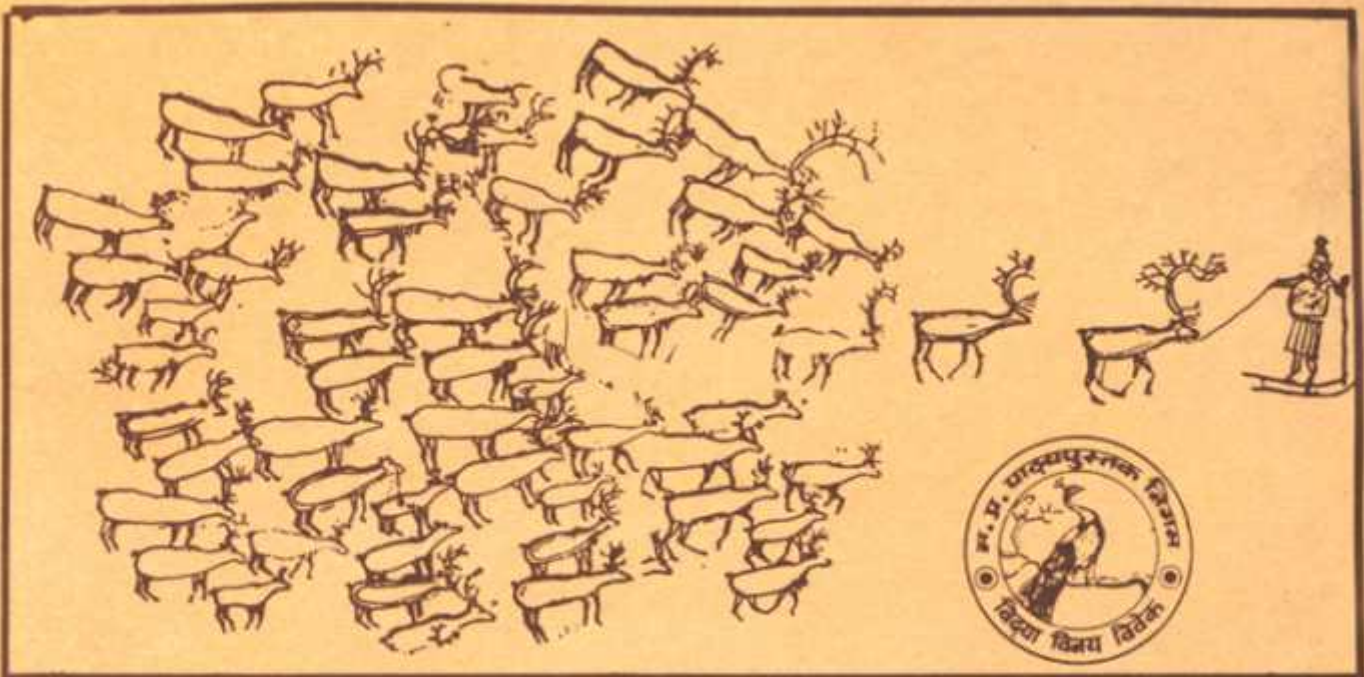
मध्यप्रदेश शासन के स्कूल शिक्षा विभाग की अधिसूचना क्रमांक एफ 46-9/99/सी-3/20, भोपाल दिनांक 14 जून 1999 के अनुसार चुनी हुई शासकीय माध्यमिक शालाओं में प्रयोगात्मक रूप से प्रचलन हेतु अनुमोदित एवं निर्धारित।

द्वितीय संस्करण (संशोधित)

प्रथम मुद्रण 1994

द्वितीय मुद्रण 1996

तृतीय मुद्रण 1999

आवरण चित्र 'देश का पर्यावरण' से साभार

मध्यप्रदेश पाठयपुस्तक निगम की ओर से एवं उनके लिए राजकमल ऑफसेट प्रिंटर्स द्वारा मुद्रित।

सामाजिक अध्ययन

कक्षा आठ

(प्रायोगिक संस्करण)

मध्य प्रदेश पाठ्यपुस्तक निगम, भोपाल

1999

आपस की बात

मध्य प्रदेश की माध्यमिक शालाओं मे विज्ञान शिक्षण मे नवाचार करने के प्रयास 1972 मे दो स्वयं सेवी संस्थाओ (किशोर भारती, बनखेड़ी व मित्र मंडल केंद्र, रसूलिया) द्वारा होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से शुरू हुए थे। इन्ही प्रयासो को आगे बढ़ाने के लिए शालाओं मे नए परिप्रेक्ष्य से सामाजिक अध्ययन, भाषा व गणित सीखने-सिखाने की तैयारी एक अगला चरण थी। 'एकलव्य' संस्था इसी उद्देश्य से बनी और लगभग 1982 से ही ये तैयारियां शुरू हो चुकी थी।

1986-87 मे, राज्य शैक्षणिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद के सहयोग से, माध्यमिक शालाओं के लिए एकलव्य द्वारा विकसित सामाजिक अध्ययन की प्रायोगिक पाठ्य सामग्री 3 जिलो की 9 माध्यमिक शालाओं की कक्षा 6 मे लागू की गई। साल भर के प्रयोग और विवेचना के आधार पर, इस सामग्री को 1987-88 में संशोधित कर फिर से छापा गया। साथ ही कक्षा 7 के लिए प्रायोगिक पाठ तैयार किए गए। 1988-89 मे कक्षा 7 की सामग्री का संशोधन किया गया और कक्षा 8 के लिए प्रायोगिक पाठ तैयार किए गए।

इस काम को आगे बढ़ाते हुए 1988 से 1990 तक कक्षा 8 के प्रायोगिक पाठ पढ़ाए गए। स्कूल के बच्चो व शिक्षकों की भागीदारी से, इन पाठो की कमियां व खूबियां उभर कर आईं। रुचि रखने वाले कई लोगो ने भी इन पाठो की समीक्षा की। इस क्रम मे पुस्तक के पाठ बदले गए, सुधारे गए और कुछ पाठ जो आठवी के बच्चो के लिए उचित नही लगे, वे हटा ही दिए गए। इन के बदले मे कुछ नए पाठ जोड़े गए। इस प्रयत्न के परिणामस्वरूप कक्षा 8 की प्रायोगिक पुस्तक का यह संशोधित संस्करण तैयार हुआ।

1989 व 1990 मे इन पुस्तको को पढ़कर कक्षा 8 के बच्चों ने बोर्ड परीक्षा दी। मूल्यांकन के दौरान भी ऐसी बहुत सी जानकारी मिली जिससे पाठो के संशोधन मे मदद मिली।

पाठ्य सामग्री के अलावा परीक्षा प्रणाली मे भी संशोधन किए गए। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण है 'खुली पुस्तक परीक्षा', जिसमें परीक्षा में पुस्तक ले जाने की अनुमति है। सामाजिक अध्ययन मे ऐसा प्रयोग स्कूली स्तर पर पहली बार किया गया है। अतः ऐसी परीक्षा के उद्देश्य और स्वरूप के बारे मे भी कुछ कहना ज़रूरी है।

सामाजिक अध्ययन के संदर्भ मे खुली पुस्तक परीक्षा के दो मुख्य उद्देश्य हैं। पहला, संदर्भ से (पाठ, नक्शे, तालिका आदि) उत्तर ढूंढ़ पाना और दूसरा, पाठ या कई पाठो मे दी गई जानकारी को समझकर अपने शब्दो मे उत्तर लिख पाना। आशा है कि ऐसी परीक्षा से बहुत सारी जानकारी याद करने का बोझ बच्चो पर से हट जाएगा।

हमारा विश्वास है कि शिक्षा का कोई भी सार्थक कार्यक्रम शिक्षकों, बच्चों व स्रोत व्यक्तियों के संयुक्त प्रयासों से ही उभर सकता है। कक्षा 6, 7 व 8 की पुस्तकों के दूसरे संस्करण इसी प्रयास के एक चरण हैं। स्कूल के अनेकानेक अनुभवों और रुचि रखने वाले लोगों की भागीदारी से ही ये पाठ धीरे-धीरे अंतिम स्वरूप लेंगे।

शिक्षा में नवाचार केवल पुस्तक छापने तक ही सीमित नहीं है। इसके लिए शिक्षक प्रशिक्षण, अनुवर्तन, फीडबैक, मूल्यांकन, परीक्षा तथा प्रशासन, इन सबका इकट्ठा बदलना ज़रूरी है। यह प्रायोगिक पुस्तक तो इस पूरी प्रक्रिया का अंशमात्र है। सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम का यह पूरा विषम काम अब ज़ोर पकड़ने लगा है। निस्संदेह यह काम आप सब के सहयोग से ही आगे बढ़ पाएगा।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद के सहयोग से यह कार्यक्रम प्रयोग के रूप में मध्य प्रदेश की 9 शालाओं में चलाया जा रहा है। कक्षा 6 व 7 की पुस्तक की तरह कक्षा 8 की पुस्तक के प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन का दायित्व भी मध्य प्रदेश पाठ्य पुस्तक निगम ने उठाया है।

आज सारे देश में शिक्षा को एक नया मोड़ देने की गहन चर्चा हो रही है। हमें आशा है कि सामाजिक अध्ययन की शिक्षा में नवाचार का प्रयास करने की ये पहल उस दिशा में एक ठोस कदम साबित होगी।

एकलव्य ग्रुप,
1994.

पाठ्य सामग्री तैयार करने में डॉ. अम्बेडकर संस्थान, महू; सागर विश्वविद्यालय; दिल्ली विश्वविद्यालय; जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली; पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़; इंदिरा गांधी शोध संस्थान, बंबई; क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भोपाल; स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खंडवा; बे ऑफ बंगाल प्रोजेक्ट (कृषि एवं खाद्य संगठन) मद्रास; ज़ेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ कम्यूनिकेशन, बम्बई; परासिया के खदान मजदूर; वैस्टर्न कोल फील्ड्स, परासिया; इंस्टिट्यूट ऑफ डिवलपमेंट स्टडीज़, जयपुर; राजस्थान विश्वविद्यालय; मद्रास के मछुआरे; मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डिवलपमेंट स्टडीज़, मद्रास और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद के साथियों का विशेष सहयोग मिला।

चित्रांकन में सहयोग दिया है धनंजय खिरवड़कर (हरदा), श्री सावरकर, विवेक, राघवेंद्र (भोपाल), ए.आर. शेख (देवास), राजेश यादव (इटारसी) और कैरन ने।

फोटोग्राफ हमने कई पुस्तकों और स्रोतों से लिए हैं। इनमें से हरएक का उल्लेख करना संभव नहीं है। इन सभी के हम आभारी हैं।

इतिहास

नागरिक शास्त्र

भूगोल

1

मुग़ल बादशाह अकबर

(सन 1556-1605)

भारत में मुगल वंश के राज्य की शुरुआत

ऊपर युद्ध के लिए तैयार एक सेना का चित्र है। इन सैनिकों के पास कई ऐसे हथियार हैं जिनके बारे में तुमने पहले के पाठों में नहीं पढ़ा है। क्या तुम इन नए हथियारों को पहचान सकते हो?

यह सेना थी मुग़ल वंश के बादशाह बाबर की। बाबर का राज्य अफग़ानिस्तान में था। वह अपना राज्य बढ़ाने की कोशिश में लगा था। उन दिनों देहली पर अफग़ान सुल्तान इब्राहिम लोदी का शासन था। 1526 में बाबर ने अपनी सेना, तोपों और बन्दूकों के साथ पानीपत नाम की जगह पर देहली के सुल्तान इब्राहिम लोदी को लड़ाई मे बुरी तरह हरा दिया।

बाबर के अधिकारी भारत के सुल्तानो के खज़ाने हथियाने के बाद अफग़ानिस्तान वापस लौट जाना चाहते थे। पर बाबर हिन्दुस्तान में ही रह कर अपना राज्य बनाना चाहता था। उसने अपने अधिकारियों को काफी समझा बुझाकर हिन्दुस्तान में राज्य बनाने के लिए राज़ी कर लिया। इसके बाद बाबर ने कई ताकतवर अफग़ान

सरदारो व राजपूत राजाओं से कई लड़ाइयां लड़ीं।

सन् 1530 में बाबर की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा हुमायूं बादशाह बना। उसे बहुत विरोध का सामना करना पड़ा। 1540 में अफ़ग़ान सुल्तान शेर शाह सूरी ने उसे हराकर हिन्दुस्तान से खदेड़ दिया। लेकिन सन् 1555 में हुमायूं फिर से लौटकर आया और अपना राज्य दुबारा बनाना शुरू किया। मगर उसी वर्ष अचानक उसका देहांत हो गया।

बाबर और उसके अमीर

बादशाह अकबर और उसके अमीर

अकबर बादशाह बना

यह वह स्थिति थी जब हिन्दुस्तान में मुग़ल वंश का राज्य ठीक से जम भी नही पाया था। चारो तरफ से दूसरे राजा व सुल्तान मुग़लो को खदेड़ने पर तुले थे। इस समय हुमायूं का 13 साल का बेटा अकबर बादशाह बना। उसकी छोटी उम्र को देखते हुए मुग़लों के एक प्रमुख अधिकारी बैरम खान ने शासन का काम चलाया और अकबर को राजकाज की शिक्षा देने का इन्तज़ाम किया।

जब अकबर 17 साल का हुआ तब उसने राजकाज की बागडोर अपने हाथों में ले ली। अकबर ने दूसरे राज्यो को जीत कर मुग़लों के राज्य को बढ़ाने व मज़बूत बनाने की कोशिश की और इसमें उसे बहुत सफलता भी मिली।

मालवा और गढ़ा कटंगा राज्यों पर विजय

उन दिनों आज के मध्यप्रदेश के इलाके में दो महत्वपूर्ण राज्य थे। एक राज्य था मालवा के सुल्तान बाज़ बहादुर का जिसकी राजधानी माण्डू थी। माण्डू धार शहर के पास है। दूसरा प्रमुख राज्य गढ़ा कटंगा था। इसकी राजधानी थी चौरागढ़। यह आज के जबलपुर शहर के पास थी। गढ़ा कटंगा गोंड राजाओं का राज्य था। अकबर के समय में यहां रानी दुर्गावती शासन करती थीं।

1561 में अकबर के मुंह बोले भाई आदम खां को मालवा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया। मालवा का सुलतान बाज़ बहादुर मुग़लों से बुरी तरह हार गया। वह माण्डू से भाग निकला और कई सालों तक अपना राज्य वापस जीतने की कोशिश करता रहा। पर अंत में वह इस कोशिश में असफल रहा और उसने मुग़लों की सेवा स्वीकार कर ली। वह एक मुग़ल अधिकारी बना दिया गया।

आदम खां ने मालवा से बहुत कीमती धन हासिल किया। पर उसने यह सारा धन अकबर को नहीं सौंपा। बहुत सी बहुमूल्य चीज़ें वह खुद हड़प जाना चाहता था। अकबर को जब यह पता चला तो वह बेहद नाराज़ हुआ और उसने आदम खां से ज़बरदस्ती सारा धन वसूल किया।

पर बादशाह से बेईमानी करने वाला आदम खां अकेला मुग़ल अधिकारी नही था। उन्ही दिनों एक दूसरे अधिकारी आसफ खां ने गढ़ा कटंगा राज्य पर चढ़ाई की और रानी दुर्गावती को हराया। रानी ने

ज़ख्मी होने के बावजूद बहुत हिम्मत से युद्ध किया। पर अपनी सेना को हारता देख उसने अपने आपको मार डाला। आसफ खां ने गढ़ा कटंगा से हीरे, जवाहरात, सोने, चांदी की बहुमूल्य चीज़ें हड़पी। इस अपार धन में से उसने अकबर को सिर्फ 200 हाथी भेजे। एक बार फिर अकबर को अपने एक अधिकारी की मनमानी और बेईमानी से सख्ती बरतनी पड़ी। उसने आसफ खां को सारा धन बादशाह के हवाले करने पर मज़बूर किया।

अकबर समझ रहा था कि उसके अधिकारियों की ये हरकतें उसके लिए बहुत बड़ी समस्या बन जाएंगी। वह अपने अधिकारियों को किसी भी तरह इतनी खुली छूट नही देना चाहता था। वह जानता था कि अगर अधिकारियों को मनमानी करने की छूट मिले तो वह मुग़ल साम्राज्य को वैसा मज़बूत नही बना सकता जैसा कि वह चाहता था।

अकबर के अमीरों ने कौन-कौन से राज्यों को जीता?
इन अमीरों ने ऐसा क्या किया कि अकबर उनसे नाराज़ हुआ ?

अकबर और तुरानी अमीरों के झगड़े

अकबर जब 1556 मे बादशाह बना तो उसके शासन में 51 बड़े अधिकारी या दरबारी थे। इन बड़े अधिकारियों को अमीर कहा जाता था और वे वास्तव में बहुत धनी हुआ करते थे। अकबर ने अपने राज्य के अलग-अलग इलाकों का कार्यभार इन अमीरों के बीच बांट दिया था। हर अमीर अपने साथ एक सेना रखता था जिसे बादशाह के आदेश पर बादशाह के सामने प्रस्तुत किया जाता था।

इस सब के बदले में बादशाह ने अमीरों को कई गांव-शहरों की जागीरें दी हुई थी। अमीर अपनी जागीर के गांव-शहरों से मिलने वाली लगान का धन अपने लिए व अपनी जागीर का शासन चलाने के लिए रख लेते थे। अकबर इन अमीरों के सहयोग से अपना राज्य चलाने की कोशिश कर रहा था। पर उसे इनका पूरा समर्थन नही मिल पा रहा था। इसका क्या कारण था?

अकबर के अमीरों में से कुछ ईरान के थे और वे ईरानी अमीर कहलाते थे। पर अधिकांश अमीर तुरान नाम के क्षेत्र से आए हुए थे, जो कि तुर्किस्तान में है। मुग़ल बादशाहों के पूर्वज भी तुरान के ही थे। कई तुरानी अमीरों का तो अकबर के खानदान से रिश्ता भी था।

इस वजह से तुरानी अमीर अपने आप को मुग़ल बादशाह के बराबर का मानते थे और वे अकबर से दब कर नही रहना चाहते थे। वे चाहते थे कि वे अपनी-अपनी जागीर को मन-मुताबिक भोगें, और उन्हें पूरी छूट हो कि वे अपनी जागीरों में जैसा चाहें वैसा व्यवहार करें। वे यहां तक चाहते थे कि सब मामलों में बादशाह उनके कहे अनुसार ही चले।

पर अकबर को यह बात बिलकुल पसन्द नही थी। वह नही चाहता था कि पूरे साम्राज्य में बादशाह के बराबर कोई और हो। वह चाहता था कि उसका हुक्म सब पर चले और सब पर उसकी निगरानी रहे। वह जिसको चाहे अमीर बनाए, जिसको चाहे छोटे या बड़े किसी भी पद पर रखे। वह चाहता था कि सारे अमीर अपनी जागीरों में बादशाह द्वारा बनाए नियमों का पालन करें और बादशाह के सभी आदेशों को तुरन्त और बेहिचक मानें।

ऊपर के अंश में जो चार वाक्य तुम्हें सबसे महत्वपूर्ण लगे उन्हें रेखांकित करो।

तुरानी अमीरों को अकबर की यह नीतियां बिलकुल भी सहन नही हुई। 1562 से 1567 तक कई तुरानी

अमीरों ने अकबर के खिलाफ विद्रोह किए। अमीर अपनी सेना लेकर अकबर पर हमला करने लगे।

अब अकबर क्या करता?

स्थिति को देखकर अकबर ने इस समस्या का एक हल ढूंढ निकाला। उसके साथ ईरानी अमीर भी थे। उसने ईरान से आए अमीरों को बढ़ावा दिया और उन्हें कई नए पद दिए। ईरानी अमीरों ने खुश होकर अकबर को पूरा सहयोग दिया। इन ईरानी अमीरों की सहायता से अकबर तुरानी अमीरों के विद्रोहों को कुचलने में सफल हुआ।

नीचे दिए वाक्य पूरे करो।
तुरानी विद्रोह का कारण था ....।
विद्रोहों को दबाने के लिए अकबर ने ......।

हिन्दुस्तानी मुसलमानों (शेखज़ादों) को अमीर बनाने की कोशिश

राज्य मज़बूत बनाने में एक कठिनाई थी कि अमीर राजा की बराबरी करते थे और उसके बस में रहने से कतराते थे। इसके अलावा अकबर के सामने एक दूसरी समस्या भी थी जो धीरे-धीरे बहुत गंभीर हो गई।

वह खुद काबुल से आया था और उसके अमीर ईरान व तुरान के थे। बाहर से आए लोग आसानी से किसी जगह अपना शासन मज़बूत नहीं बना सकते थे - क्योंकि उस जगह के ताकतवर लोग विरोध करते थे। अकबर यह समझता था कि जब तक हिन्दुस्तान के शक्तिशाली और महत्वपूर्ण लोग उसका राज्य नही स्वीकार करेंगे, तब तक मुग़ल राज्य को हमेशा उन लोगों से खतरा बना रहेगा। उन दिनों हिन्दुस्तान में दो तरह के लोग बहुत महत्वपूर्ण थे - एक, राजपूत राजा, दूसरे ज़मीन व सम्पत्ति वाले मुसलमान परिवार जो कई सदियों से भारत में रह रहे थे। इन्हें शेखज़ादा

अजमेर के दरगाह में अकबर। भारतीय मुसलमान सूफी संतो को बहुत मानते थे। अकबर सूफियों के दरगाहों में जाने लगा।

कह कर बुलाया जाता था। अकबर चाहता था कि ये दोनों प्रकार के महत्वपूर्ण हिन्दुस्तानी परिवार उसके साथ आ जाएं। उन्हें जीतने के लिए उसने कई शेखज़ादों को अपने दरबार में पद दिए व उन्हें अपना अमीर बनाया। उसने उनके धर्म के प्रति श्रद्धा व्यक्त की।

ऊपर के चित्र में अकबर क्या कर रहा है? इसका शेखज़ादों पर क्या असर पड़ा होगा?

राजपूतों को अमीर बनाने की कोशिश

जहां तक राजपूत राजाओं की बात थी, अकबर ने पाया कि वे उसके अमीर बनना पसंद नहीं करते थे। उनकी तो इच्छा यह थी कि वे स्वतंत्र रहकर अपने राज्यों में शासन करें।

अकबर ने सोचा कि अगर वह राजपूत राजाओं को अपने दरबार में शामिल करना चाहता है तो उसे लोगों को यह दिखाना पड़ेगा कि वह हिन्दुओं के साथ कोई भेदभाव नहीं करता और सचमुच हिन्दुस्तान के लोगों के साथ मिलकर राज्य चलाना चाहता है। उन दिनों हिन्दुओं पर दो विशेष कर लगाए जाते थे - जज़िया कर और तीर्थ स्थानों की यात्रा करने पर कर। जज़िया कर बादशाह के सभी अधिकारियों व अनाथ लोगों से नहीं लिया जाता था। अकबर ने सन् 1562 में यात्रा कर हटा दिया और 1564 में हिन्दुओं से जज़िया कर लेना भी बंद कर दिया।

कुछ राजपूत राजा अकबर की इस बात से प्रभावित हुए और उसकी सेवा में आ गए। उन में से एक था राजा बारमल। वह आमेर का राजा था। (यह जगह जयपुर के पास है।) अकबर ने राजा बारमल को अपना अधिकारी बना लिया। (आगे चल कर बारमल का बेटा भगवानदास और पोता मानसिंह भी मुग़ल राज्य के बड़े अधिकारी बने।)

अकबर ने राजा बारमल को उसके सहयोग के बदले में कई रियायतें या छूट दीं। उसने बारमल को आमेर का राज्य लौटा दिया और कहा कि उसके वंशजों से भी आमेर कभी नहीं छीना जाएगा।

अकबर ने सभी राजपूत राजाओं के सामने यह प्रस्ताव रखा कि अगर वे उसके अधीन हो जाते हैं तो वह उनका राज्य लौटा देगा। इसके अलावा राजपूत राजाओं को मुग़ल अमीर बनाया जायेगा। उन्हें मुग़ल

अकबर के महल में एक हिन्दू रानी की जचकी हुयी है। खुशी मनानेवालियों में राजपूत और तुर्की महिलाएं शामिल हैं

बादशाह की तरफ से दूर-दूर के इलाके जीतने व उनका शासन संभालने के लिए भी भेजा जाएगा। इसके बदले उन्हें हिन्दुस्तान में दूसरी जगहों पर अलग से जागीरें भी दी जायेंगी। अकबर का यह आशय था कि इस तरह की विशेष रियायतों से आकर्षित होकर राजपूत राजा उसका विरोध करना छोड़ देंगे और उसकी सेवा में आ जाएंगे।

हिन्दुस्तान के लोगों के साथ मिल कर राज्य चलाने की अपनी इच्छा को ज़ाहिर करने के लिए अकबर ने कुछ और महत्वपूर्ण कदम उठाए। उसने राजा बारमल की बेटी मणिबाई से शादी की। शादी के बाद मणिबाई को हिन्दू धर्म खुल कर मानने की इजाज़त दी। आमतौर पर लड़की को ससुराल वालों के रीतिरिवाज़ मानने पड़ते हैं। अकबर के समय से पहले सुल्तानों व बादशाहों ने जब हिन्दू लड़कियों से शादी की तब उन्हें अपना पुराना धर्म मानने की आज़ादी नही दी। (मणिबाई के अलावा अकबर ने कई और राजपूत स्त्रियों से शादी की थी।)

अकबर ने हिन्दुओं के प्रति धार्मिक भेदभाव मिटाने के लिए क्या-क्या कदम उठाए?
अकबर ने राजपूत राजाओं को कौन से विशेष लाभ दिए, उनकी सूची बनाओ।
अकबर ये कोशिशें क्यों कर रहा था - जो तुम्हें समझ में आया लिखो।

अब आओ, देखें कि अकबर की ये कोशिशें सफल हुई या नही।

अकबर ने राजपूतों पर युद्ध छेड़ा

अकबर के व्यवहार से अधिकांश राजपूत राजा आकर्षित नही हुए। वे मुग़लों के अधीन हो कर नही, स्वतंत्र रह कर राज्य करना चाहते थे। अन्त तक वे इसी कोशिश में जूझते रहे। राजपूतों को मुग़लो के अधिकारी बनने में कई लाभ दिख रहे थे, पर ये स्वतंत्र राज्य के लाभ से अधिक तो न थे। राजपूत राजाओं का यह रुख जानकर अकबर ने तय कर लिया कि अब तो हथियारों के बल पर ही उन्हें झुकाना होगा। उसने एक-एक कर के महत्वपूर्ण राजपूत राजाओं को युद्ध में हराने की ठानी।

सन् 1568 में मेवाड़ की प्रसिद्ध राजधानी और मज़बूत किले चित्तौड़गढ़ पर हमला कर के अकबर ने उसे जीत लिया। मेवाड़ का राजा उदयसिंह हार कर भी मुग़लों के सामने झुकना नहीं चाहता था। वह बच निकला और दूसरी जगह जा कर फिर से लड़ने की तैयारी करने लगा।

चित्तौड़ की विजय के बाद जोधपुर और रणथंभोर के राजपूत राज्यों पर भी मुग़लों का अधिकार बन गया।

रणथंभोर किले पर जो आक्रमण हुआ उसका चित्र देखो। दूसरे चित्र में दिखाया है कि रणथंभोर का राजा सुजान सिंह हाड़ा अकबर की हुकूमत स्वीकार कर रहा है।

राजपूत राजा आखिर समझ गए कि वे मुग़लों से टक्कर नहीं ले सकते। दूसरी तरफ अकबर उन्हें अपने साथ शामिल करने के बदले में कई विशेष लाभ दे रहा था। इसलिए अब एक के बाद एक बहुत से राजपूत राजा मुग़लों की सेवा में आने लगे और मुग़ल अधिकारी बने।

अब उनके राज्य भी उनके पास सुरक्षित रहे। हां, यह ज़रूर था कि वे अपने राज्य में मुग़ल बादशाह की अनुमति के बगैर किले मज़बूत नही करवा सकते थे, अपनी सेना नहीं बढ़ा सकते थे और दूसरे राज्यों के साथ युद्ध या समझौता - दोनों ही नही कर सकते थे। पर इन पाबंदियों के बदले में उनके राज्यों को मुग़लों की शक्ति की सुरक्षा मिली हुई थी। उन्हें मुग़लों की सेवा में ऊंचे उठने के मौके मिले हुए थे।

रणथंभोर के किले पर मुग़ल सेना का आक्रमण।

ऐसा चित्र उस समय के चित्रकार ने बनाया। पहाड़ी पर तोप चढ़ाना ज़रूरी था। तभी तो गोला किले की ऊंची दीवारों को पार कर किले के अन्दर पहुंचेगा। मुश्किल मुकाबला लगता है क्योंकि तीन तोपें काफी नहीं पड़ रही।

बड़ी कठिनाई से एक और तोप पहाड़ी पर कैसे चढ़ाई जा रही है, देखो।

रणथंभोर के पराजित किले से निकलकर राजपूत राजा अकबर की हुकूमत स्वीकार कर रहा है।

अकबर की नीति से तुरानी-ईरानी अमीरों को परेशानी

धीरे-धीरे अकबर के शासन काल में अनेक शेखज़ादा व राजपूत उसके अधिकारी बने। राजपूतों के अलावा अन्य हिन्दू भी अकबर के दरबार में शामिल हुए। जैसे - टोडरमल (जिसे अकबर ने राजा की उपाधि दी) और बीरबल। इनके नाम व किस्से तुमने सुने होंगे।

जैसे-जैसे शेखज़ादा और राजपूत व अन्य हिन्दू अकबर के अमीर बनते गए वैसे-वैसे ईरानी व तुरानी अमीर परेशान होने लगे। शुरू में अधिकांश अमीर तुरानी या ईरानी होते थे। बादशाह को जो भी करना हो उनके सहयोग से ही कर सकता था। मगर अब स्थिति बदल गयी थी। अगर तुरानी व ईरानी अमीर विरोध भी करें तो बादशाह हिन्दुस्तानी अमीरों की सहायता से अपनी इच्छा की पूर्ति कर सकता था। इस कारण तुरानी व ईरानी अमीरो में असंतोष बढ़ रहा था। उन्हें लग रहा था कि राजपूतों की वजह से उनकी शक्ति छिन रही है और अब पहले की तरह उनकी पूछ नहीं होती।

1575 में अकबर ने जज़िया कर लगाया

.........., ..., व अन्य राजपूत राज्य मुग़लों के अधीन हो गये।

हारे हुए राजपूत राजाओं के साथ अकबर ने क्या व्यवहार किया ?

अकबर ईरानी-तुरानी अमीरों को शांत करने के लिए कुछ उपाय ढूंढने लगा। वह अपने राज्य में न तो राजपूतों की स्थिति कमज़ोर करना चाहता था और न ही तुरानी-ईरानी अमीरों की ताकत पहले जैसी हो जाने देना चाहता था। उसने सोचा कि अगर वह

हिन्दुओं के खिलाफ कुछ बातें करे तो शायद तुरानी-ईरानी अमीर संतोष कर जाएं। वह सन् 1575 से हिन्दुओं के खिलाफ बोलने लगा। उसने हिन्दुओं पर जज़िया कर फिर से लागू कर दिया। उसने अपने कुछ अधिकारियों को यह आदेश भी दिया कि वे हिन्दुओं को मूर्ति पूजा करने से रोकें।

अकबर की धार्मिक नीति मे क्या कोई परिवर्तन आया दिखता है? स्पष्ट करो।

1580 में ईरानी-तुरानी अमीरों का विद्रोह

अकबर ने हिन्दुओं के साथ भेदभाव किया, लेकिन इस सब का तुरानी व ईरानी अमीरों पर कोई असर नहीं पड़ा। सन् 1580 में इन लोगों ने अकबर के खिलाफ ज़बर्दस्त विद्रोह किया। दोनो दिशाओं में विद्रोह भड़का - काबुल में भी और बंगाल में भी।

तुम्हारे विचार में अकबर क्या करता तो ईरानी तुरानी अमीर संतुष्ट होते?

इस बार अकबर ने हिन्दुस्तानी अमीरों की सहायता से तुरानी व ईरानी अमीरों के विद्रोह को कुचला। राजा मानसिंह और भगवानदास ने काबुल का विद्रोह दबाया और टोडरमल ने बंगाल में ईरानी व तुरानी अमीरों के विद्रोह को खत्म किया। अकबर को अब कोई खतरा नहीं रहा। एक बार फिर राज्य में उसकी शक्ति को कम न किया जा सका।

ज़रा सोच कर बताओ -
1575 में अकबर ने जज़िया वापस लागू किया था। फिर भी राजपूत अमीरों ने उसका साथ दिया। वे अकबर से असंतुष्ट क्यों नहीं हुए?

इस तरह राजपूतों और शेखज़ादों (भारतीय मुसलमानों) को ईरानी व तुरानियों के साथ-साथ अपने अमीर बनाने से मुग़ल साम्राज्य को बहुत फायदा हुआ। जब ईरानी और तुरानी अमीरों ने विद्रोह किया तो अकबर ने राजपूतों और भारतीय मुसलमानों की मदद से विद्रोह को दबाया।

तुम सोचकर बताओ कि अकबर ने ईरानी और तुरानी अमीरों को दरबार से पूरी तरह क्यों नहीं निकाल दिया?

1580 के विद्रोह के बाद सुलह कुल की नीति

1580 के विद्रोह ने अकबर पर गहरा असर छोड़ा। उसे लगा कि हिन्दुओं से भेद-भाव करने के आदेश हटा लेना चाहिए क्योंकि उनसे ईरानी तुरानी अमीर तो खुश नहीं हुए और व्यर्थ में हिन्दुओं को ठेस पहुंची।

अब अकबर के धार्मिक व्यवहार में फिर से एक बड़ा बदलाव आया। 1580 में ही उसने हिन्दुओं पर लगाया गया जज़िया कर फिर से हटा दिया।

1575 में अकबर ने जज़िया कर क्यों लगाया था? 1580 में क्यों हटा दिया?

अकबर ने सब धर्मों के संतों, मंदिरों, मदरसों व मठों को दान देना शुरू कर दिया। पहले केवल मुसलमान संतों, विद्वानों व मस्जिदों को दान दिया जाता था। पर 1580 के बाद अकबर दूर-दूर के मंदिरों व मठों को भी दान देने लगा।

वैसे अकबर को दूसरे धर्मों में बहुत रुचि भी थी। कहा जाता है कि वह रात भर धार्मिक विचारों में डूबा रहता था और जो भी धार्मिक व्यक्ति आए उससे चर्चा करता था।

उसने अपने राजमहल के पास की मस्जिद में एक इबादत खाना (यानी ईश्वर का प्रार्थना घर) बनवाया था। उसने इस्लाम के प्रमुख विद्वानों यानी मौलवियों को बुला कर इबादत खाना में धर्म की चर्चाएं की।

इबादतखाने में चर्चा

उसने मौलवियों से कहा, "मेरा एक ही उद्देश्य है - सच्चाई का पता लगाना, धर्म के सही सिद्धांतों को उजागर करना।"

पर अकबर ने पाया कि मौलवी आपस में बहुत गाली गलौच व झगड़े करने लगते थे। इस कारण उसका मन ऊब गया। सन् 1580 से उसने दूसरे कई धर्मों के विद्वानों व संतों को चर्चा के लिए इबादत खाना मे बुलाना शुरू किया। हिन्दू पंडित, सूफी संत, गुजरात के जैन मुनि, पारसी विद्वान और ईसाई धर्म के पादरी भी अकबर के निमंत्रण पर चर्चा करने वहां गए। ईसाई पादरी पुर्तगाल देश के उन व्यापारियों के साथ आया करते थे जो भारत से माल खरीदने आने लगे थे।

इन चर्चाओं से अकबर के मन पर बहुत असर पड़ा। उसका दरबारी व मंत्री अबुल फज़ल भी अपने विचारों से अकबर को प्रभावित करता था। (अबुल फज़ल ने ही अकबर के शासन पर किताबें लिखी जिन्हें पढ़ कर हम आज उस समय के बारे में बहुत कुछ जान पाते हैं।)

अकबर के मन में धर्म के प्रति एक नया विचार बन गया। उस समय का एक इतिहासकार बदायुनी लिखता है, "इन चर्चाओं के फलस्वरूप बादशाह के मन में पत्थर की लकीर की तरह यह धारणा बन गई कि सब धर्मो में अच्छे लोग होते हैं। अगर सच्चा ज्ञान सब धर्मों में प्राप्त हो सकता है तो यह कहना ठीक नहीं है कि एक ही धर्म में सच्चाई है, बाकी धर्म झूठे हैं।"

इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर अकबर ने एक नई नीति अपनाई - **सुलह कुल**, यानी सब के बीच सुलह की नीति - "संपूर्ण रूप से शांति", सब धर्मों व संप्रदायों के बीच शांति की नीति।

इसी नीति का पालन करते हुए अकबर ने गोहत्या पर रोक लगा दी। अपने राजमहल में उसने हिन्दू, पारसी आदि धर्मों की कुछ रीतियां माननी शुरू कर दी। उसने अलग-अलग धर्मों के मुख्य ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया। गीता, महाभारत, अथर्ववेद, बाइबल, कुरान, पंचतंत्र, सिंहासन बत्तीसी व विज्ञान की भी कई पुस्तकें फारसी में अनुवाद की गईं ताकि फारसी बोलने वाले मुसलमान उन्हें पढ़ कर समझ सकें।

इस्लाम धर्म की कई ऐसी बातों को उसने छोड़ दिया जो उसे ठीक नहीं लगी।

अकबर की सुलह कुल नीति मुग़ल साम्राज्य के लिए महत्वपूर्ण थी क्योंकि अकबर के अमीरों में सब धर्मों के लोग थे। उन सब को मिल कर राज्य का कामकाज चलाना था। उसके राज्य में लाखों मुसलमान

थे पर अधिकतर छोटे-छोटे अधिकारी व कर्मचारी हिन्दू ही थे। भारत के अधिकतर किसान, कारीगर व ज़मीदार हिन्दू थे। व्यापारी वर्ग के लोग हिन्दू ,जैन या पारसी धर्म मानते थे।

इतने बड़े राज्य के लिए इन सब लोगों का समर्थन चाहिए था। तभी राज्य का काम ठीक से और शांति से चल पाता। सुलह कुल नीति से सब तरह के लोगो के मन को बादशाह के प्रति खीचा जा सका। इसी नीति को अकबर के बाद आने वाले मुग़ल बादशाहों ने भी अपनाया।

o o o o

अकबर के कहने पर रहीम ने रामायण का फारसी में अनुवाद किया। उस पुस्तक में यह चित्र बना हुआ है। यह कौन सा दृश्य है?

अभ्यास के प्रश्न

1. जब अकबर बादशाह बना तब अमीरों मे कौन-कौन लोग थे? अकबर ने अपने शासन काल में किन-किन लोगों को अमीर बनाया?
2. तुरानी अमीर क्या चाहते थे और अकबर क्या चाहता था - छांट कर अलग-अलग लिखो
   क. अमीरों को बादशाह के समान अधिकार मिले।
   ख. अमीर अपनी जागीरों का संचालन बादशाह के नियमों के अनुसार करें।
   ग. बादशाह अमीरों के कहने पर चले।
   घ. सारी शक्ति बादशाह में केंद्रित रहे।
3. राजपूत राजाओं को अपना अमीर बनाने के लिए अकबर ने उन्हें कौन-कौन सी छूट दीं?
4. सही गलत बताओ :-
   क. अकबर ने जो रियायते दी - उससे प्रभावित होकर अधिकांश राजपूत राजा उसके अमीर बनने के लिए तैयार थे।
   ख. अधिकांश राजपूत राजा अकबर से मिली रियायतों के बावजूद उसके अमीर नही बनना चाहते थे, क्योकि स्वतंत्र रूप से राज्य करना चाहते थे।
5. राजपूतों और भारतीय मुसलमानों के अमीर बनने से ईरानी और तुरानी अमीर परेशान क्यों हो गये - अपने शब्दो में समझाओ।
6. अकबर ने 1563 में जज़िया कर समाप्त क्यो किया?
   1575 में अकबर ने जज़िया कर को फिर से लागू क्यों किया?
   1580 में उसने जज़िया कर को फिर से क्यों हटाया?
7. धार्मिक चर्चाओं से अकबर ने क्या निष्कर्ष निकाला ?
8. सुलह-कुल की नीति के अनुसार अकबर ने क्या-क्या कदम उठाये ? ये उसके राज्य के लिये क्यो ज़रूरी थे ?
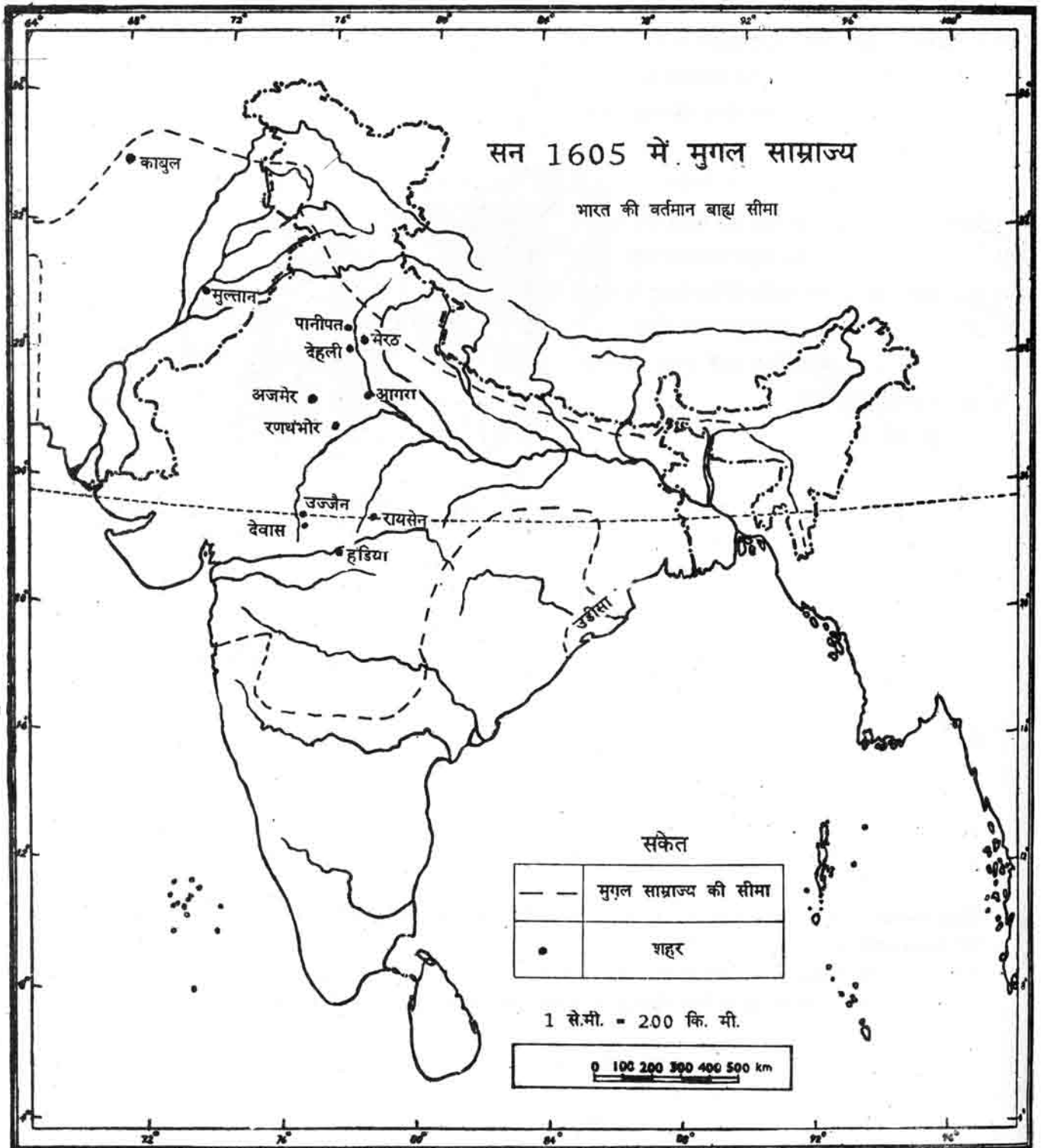
Based upon Survey of India Outline Map printed in 1987.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
Responsibility for correctness of internal details shown on the map rests with the publisher.

मुग़ल साम्राज्य के अमीर

मनसबदार और अमीर

शासन का काम चलाने वाले कई अधिकारी और कर्मचारी होते हैं। मुग़ल काल में उन्हें मनसबदार कहा जाता था। पूरे मुग़ल साम्राज्य में हज़ारों छोटे बड़े मनसबदार यानी शासकीय अधिकारी व कर्मचारी थे। मनसबदार साम्राज्य में बादशाह के कानून और आदेश लागू करते थे। वे बादशाह के लिए लगान का हिसाब रखते थे। बादशाह के खिलाफ अगर कोई विद्रोह करे तो मनसबदार विद्रोह दबाते थे। मुग़ल साम्राज्य की रक्षा करना और दूसरे क्षेत्रों में मुग़ल वंश का राज्य फैलाना भी मनसबदारों का काम था। हज़ारों मनसबदारों में से लगभग 500 ऐसे थे जो बहुत ऊंचे अधिकारी थे और उन्हें अमीर कहा जाता था।

यहां मुग़ल साम्राज्य के एक अमीर को दिखाया गया है। जब भी अमीर एक जगह से दूसरी जगह जाते तो वे इसी तरह जाते थे
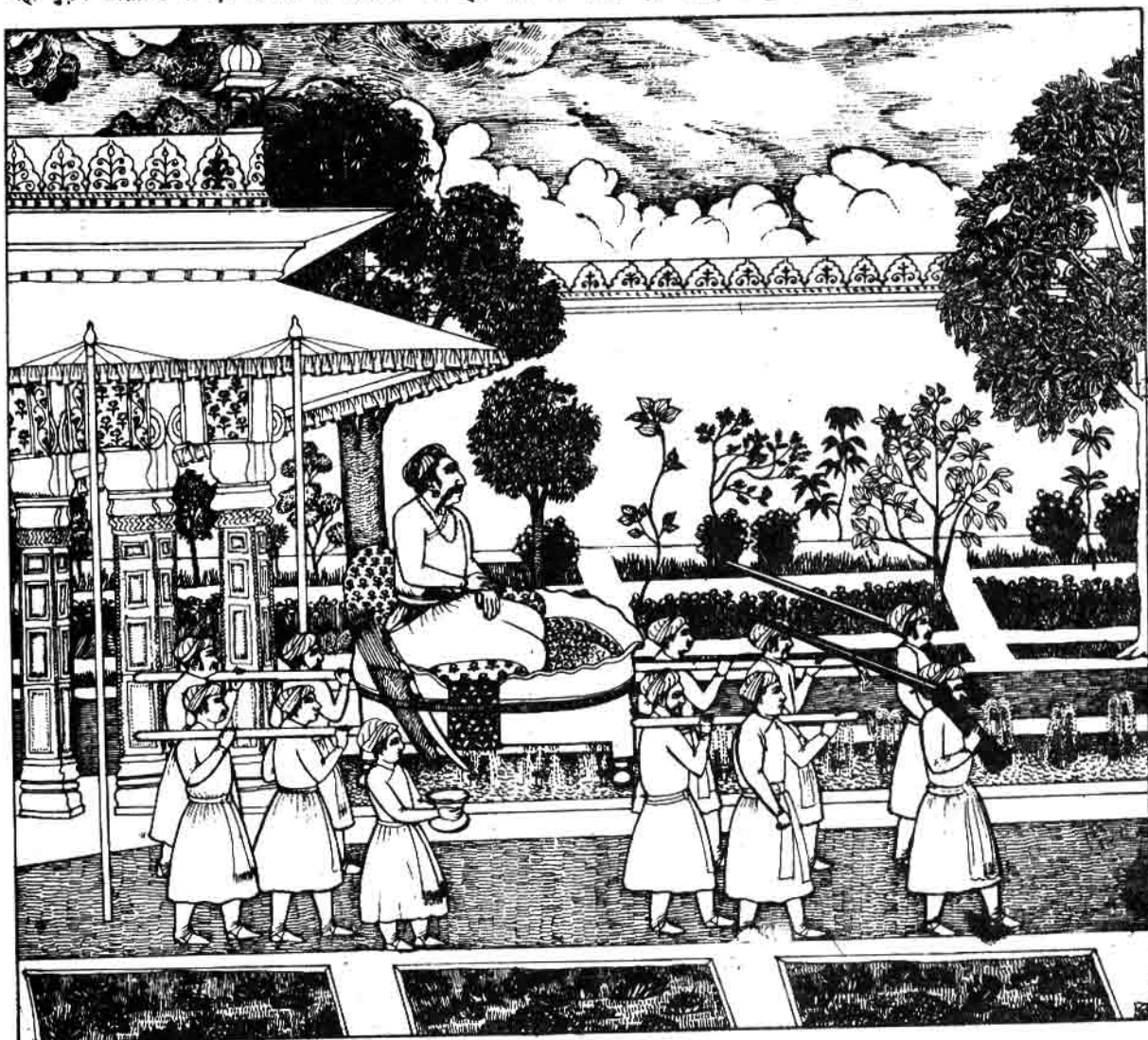
उन दिनों मुग़ल अमीरों यानी बड़े मनसबदारों को जितना वेतन मिलता था, उतना दुनिया के किसी भी अन्य राज्य के अधिकारियों को नहीं मिलता था। तभी तो मुग़ल अमीर बड़ी शान-शौकत से रहते थे। मुग़ल साम्राज्य में 8,000 रुपए महीने से ले कर 45,000 रु महीने तक वेतन वाले अमीर थे। इतना वेतन और वो भी तब, जब चीज़ों की कीमतें बहुत कम थीं। तब एक रुपए में लगभग 40 किलो गेहूं मिल जाता था।

चलो, पता लगाएं कि मुग़लों के समय में कोई मनसबदार कैसे बनता था। यह भी जानें कि मुग़ल मनसबदारों और आजकल के अधिकारियों में क्या समानताएं और क्या अन्तर हैं।

ऊपर दिये चित्र को देख कर मुग़ल साम्राज्य के अमीरों के बारे में तुम्हारे मन में क्या क्या बातें आती हैं - चित्र में दिखाई चीज़ों को देख कर बताओ।

अमीर बाकर खान की जीवनी

मुग़ल काल के एक अमीर की जीवनी पढ़ें। इस अमीर का नाम था बाकर खान। वह बादशाह जहांगीर का अमीर था। जहांगीर बादशाह अकबर का बेटा था। सन् 1605 में अकबर की मृत्यु के बाद जहांगीर मुग़ल साम्राज्य का बादशाह बना। उसी ने बाकर खान को मनसबदार बनाया था।

क्या तुम जानते हो कि आजकल शासकीय नौकरी किस प्रकार मिलती है? कक्षा में चर्चा करो। तुम्हारे अनुमान में बाकर खान को शासकीय नौकरी किस प्रकार मिली होगी?

मनसबदार की नियुक्ति

बाकर खान के पूर्वज ईरानी अमीर थे। उसके पिता रहमत खान अकबर के ज़माने से मुग़लों के मनसबदार थे।

सभी मनसबदारों की तरह रहमत खान का भी एक जगह से दूसरी जगह तबादला होता रहता था। एक बार तबादला हो कर रहमत खान की पोस्टिंग हंडिया में हुई। उस वक्त तक उनके दो बेटे असफ खान और बाकर खान बड़े हो चुके थे। रहमत खान को अपने बेटों की चिन्ता होने लगी थी। वे सोचते, "पता नहीं बेटों को बादशाह की नौकरी मिलेगी कि नहीं।"

रहमत खान और उनके पिता भी मुग़ल बादशाहों की सेना में रहे थे। **पर यह ज़रूरी नहीं था कि पिता के बाद बेटों को भी मनसबदार बना दिया जाए। यह पूरी तरह से बादशाह की मर्ज़ी पर था कि वे किसे मनसबदार बनाते हैं और किसे नहीं।**

एक दिन रहमत खान हंडिया से उज्जैन जाने की तैयारी कर रहे थे। वे एक संदूक में कुछ गहने, सोने के सिक्के और कीमती ज़री के कपड़े रखवा रहे थे कि बाकर खान कमरे में आया।

बाकर खान ने पूछा, "अब्बाजान, आप यह सब उज्जैन किस लिए ले जा रहे हैं?"

रहमत खान ने जवाब दिया, "बेटे, मैं उज्जैन में मालवा के सूबेदार अब्दुल्लाह खान से मिलने जा रहा हूं। मैं चाहता हूं वे तुम दोनों भाइयों की सिफारिश बादशाह जहांगीर से कर दें। सिफारिश वे यूं ही तो नहीं करेंगे। उन्हें कुछ पेशकश (भेंट) देनी पड़ेगी। इसीलिए ये कीमती चीज़ें ले जा रहा हूं।"

उन दिनों मुग़लों ने अपना साम्राज्य 15 सूबों यानी प्रान्तों में बांटा था। उनमें से एक सूबा या प्रान्त था

मालवा जिसकी राजधानी उज्जैन थी। सूबे का सबसे बड़ा अधिकारी सूबेदार कहलाता था।

सूबेदार जैसे बड़े अधिकारियों की सिफारिश पर बादशाह नए मनसबदारों को नियुक्त करते थे। इसीलिए बाकर खान के पिताजी सूबेदार अब्दुल्लाह खान से मिलने गए।

सूबेदार साहब सिर्फ बड़े लड़के बाकर खान की सिफारिश करने को राज़ी हुए। उन्होंने बादशाह के नाम एक चिट्ठी लिखी जिसमें बाकर खान की खूब तारीफ की और लिखा कि बाकर खान एक अच्छा तलवार बाज़ है। सूबेदार ने यह भी लिखा कि बाकर खान के पिता रहमत खान एक वफादार मनसबदार हैं। अन्त में सूबेदार ने लिखा कि बाकर खान को एक छोटा मनसबदार बना दिया जाए तो उचित होगा।

बादशाह जहांगीर का दरबार। बादशाह के आगे कोई बैठ नहीं सकता था। जो लोग खड़े है उनमें से एक पुर्तगाली पादरी को पहचानो

अपनी चिट्ठी को सूबेदार ने एक हरकारे (डाकिए) के हाथ आगरा भेज दिया। आगरा मुग़लों की राजधानी थी और वहां बादशाह रहता था।

आगरा में चिट्ठी मीर बख़्शी के हाथ पहुंची। मीर बख़्शी ही वो अधिकारी था जो मनसबदारों की नियुक्तियों की देख रेख करता था। अगले दिन जब बादशाह जहांगीर दरबार में बैठे थे तो मीर बख़्शी ने उनके सामने मालवा के सूबेदार की चिट्ठी पढ़ी।

जैसा कि पहले भी कहा है मनसबदारों की नियुक्ति के बारे में बादशाह की इच्छा व पसंद ही सबसे प्रमुख बात थी। जहांगीर को बाकर खान पसंद आया और उसने मालवा के सूबेदार की सिफारिश को मंजूरी दे दी।

जहांगीर ने मीर बख़्शी से कहा, "आप बाकर खान को मनसबदार बनाने का फरमान तैयार करवाइए। बाकर खान को 100 घुड़सवार और 200 घोड़ों की

पलटन रखने की ज़िम्मेदारी दी जाए। उसका पहला काम क्या होगा, यह आप पता कर के मुझे बताइए।"

मीर बख़्शी से पूछताछ कर के बादशाह ने बाकर खान को रायसेन का कोतवाल बनाया।

कुछ दिनों बाद एक शाही फरमान (जिसे हम आजकल सरकारी आदेश कहते हैं) जारी हुआ जिसमें बाकर खान की नियुक्ति की सारी बातें लिखी थीं। बाकर खान की तंख्वाह 5,000 रुपए महीने तय हुई थी। 100 घुड़सवारों व 200 घोड़ों की पलटन के लिए उसे अलग से 1,500 रुपए महीने के हिसाब से देना तय हुआ था।

बाकर खान के पास जब फरमान पहुँचा तो वह बहुत खुश हुआ। आखिर वह भी मनसबदार बन गया था।

आजकल से तुलना

मुग़लों के समय सारे अमीरों और अधिकारियों की नियुक्ति इसी तरह होती थी। मगर यह आजकल के अधिकारियों की नियुक्ति से कितना फर्क है। आजकल सरकारी अधिकारियों की नियुक्ति कुछ इस प्रकार होती है। विभिन्न सरकारी विभागों में जो पोस्टें निकलती हैं उनका अखबारों में इश्तेहार निकलता है। इश्तेहार में बताया जाता है कि कितनी पोस्टें हैं, उन्हें पाने वाले की क्या योग्यता होनी चाहिये आदि। कोई भी व्यक्ति उन पोस्टों के लिये आवेदन दे सकता है। आवेदन देने वाले को परीक्षा देनी पड़ती है और फिर इंटरव्यू (साक्षात्कार) देना पड़ता है। जो इन सब में पास होते हैं उन्हें नौकरी मिलती है। ये नियम हैं। अगर किसी भी नियुक्ति में इन नियमों का पालन नहीं हो तो लोग कोर्ट में मुकद्दमा कर सकते हैं।

मगर ये बातें मुग़लों के समय में नहीं थीं। अगर बाकर खान को नौकरी नहीं मिलती तो वह किसी नियम के आधार पर कहीं पर भी शिकायत नहीं कर सकता था। ख़ैर सौभाग्य से बाकर खान को मनसबदार बना दिया गया था। अब आगे क्या होता है, आओ देखें।

मनसबदार की ज़मानत और सैनिक ज़िम्मेदारी

फरमान पाने के कुछ दिनों बाद बाकर खान मालवा के सूबेदार से मिलने गया। रायसेन, जिसका कोतवाल बाकर खान को बनाया गया था, मालवा सूबे में ही पड़ता था।

जब बाकर खान सूबेदार अब्दुल्लाह खान से मिला तो वे बोले, "तुम्हें एक छोटा मनसबदार बनाया गया है। अगर तुम अच्छा काम करोगे तो आगे चल कर अपने अब्बा की तरह या मेरी तरह एक बड़े मनसबदार भी बन जाओगे।"

ज़मानत

सूबेदार ने बाकर खान से आगे पूछा, "तुमने अपना ज़मानतदार किसे बनाया है?" बाकर खान ने जवाब दिया, "सेठ हुकुमचन्द अब्बाजान के ज़मानतदार हैं। मुझे अच्छी तरह जानते भी हैं। वे ही मेरी भी ज़मानत दे देंगे।"

उन दिनों मुग़ल मनसबदारों को वेतन लेने से पहले किसी धनी और जाने माने व्यक्ति से अपनी ज़मानत दिलवानी पड़ती थी। अगर मनसबदार पैसों के मामले में कोई गड़बड़ी करे या अपना काम ठीक से नहीं करे तो बादशाह उसके ज़मानतदार से पैसे वसूल कर के राज्य का नुक्सान भर सकता था।

बाकर खान ने कुछ दिनों में उज्जैन के सेठ हुकुमचन्द से अपनी ज़मानत भरवा ली।

घोड़े रखना

इस प्रकार वेतन पाने के लिए एक शर्त तो पूरी हुई। एक और शर्त बची थी - बाकर खान को बादशाह के लिए 100 घुड़सवार रखने थे।

उन दिनों छोटे बड़े सभी मनसबदारों को कुछ घुड़सवार सैनिक रखने पड़ते थे। किसी मनसबदार को 10, किसी को 100 और किसी को 5,000 घुड़सवारों की टुकड़ी रखनी पड़ती थी।

जब बादशाह को सैनिकों की ज़रूरत पड़ती तो वह आदेश देकर मनसबदारों के सैनिक बुलवा लेता था। बादशाह के पास अलग से अपनी सेना भी होती थी। पर वह हर मनसबदार से भी सेना की टुकड़ी रखवाता था। अपने सैनिकों का वेतन और घोड़ों का खर्चा मनसबदार अपने वेतन से देता था।

इस तरह साम्राज्य में एक बड़ी सेना रखने की ज़िम्मेदारी सभी मनसबदारों के बीच बंट जाती थी। मनसबदार अपने द्वारा रखे सैनिकों का उपयोग अपने प्रशासनिक काम के लिए भी कर सकते थे।

बाकर खान के पिता भी तो मनसबदार थे और वे एक हज़ार घुड़सवार व दो हज़ार घोड़ों की पलटन रखते थे। बाकर खान ने अपने पिता के घोड़ा व्यापारी से मुलाकात की और उसकी सहायता से 200 घोड़े खरीदे। अपने पिता के सैनिकों से कह कर ही उसने उनके गांवों से और आदमी बुलवाए।

घोड़े खरीदना

इस तरह 100 जवानों को नौकरी में रख कर बाकर खान ने अपनी सेना की टुकड़ी बनाई। यह सारा खर्चा उसने सेठ हुकुमचन्द से उधार ले कर किया क्योंकि उसे अभी वेतन नहीं मिला था।

ये वाक्य पूरे करो :-

1 मुग़लों के समय में सारे अधिकारियों को ....नियुक्त करता था।

2 बादशाह अपने बड़े अमीरों की .... पर नए अधिकारियों को नियुक्त करता था।

3 मनसबदारों को अपने वेतन के पैसे मिलते थे और .... के भी पैसे मिलते थे।

4 मनसबदार जीवन भर एक जगह व एक ही पद पर .... रहता था।

बाकर खान ने कोतवाली संभाली

जब सेना की टुकड़ी तैयार हुई तो बाकर खान अपनी नियुक्ति का शाही फरमान ले कर रायसेन पहुंचा। बाकर खान रायसेन पहुंच कर कोतवाली गया और अपना काम संभालने लगा। उसका काम था शहर में चोर डाकुओं को पकड़ना, शहर में शान्ति बनाए रखना, शहर में आने जाने वालों पर और शहर में हो रही घटनाओं पर नज़र रखना।

कुछ महीने इस तरह गुज़र गए। धीरे-धीरे बाकर खान का पैसा ख़त्म होने लगा। ये पैसे सेठ हुकुमचन्द से उसने उधार पर लिए थे। अब सेठ भी अपने पैसे वापस मांग रहा था। बाकर खान को अभी तक वेतन नहीं मिला था।

बाकर खान ने अपने एक आदमी को आगरा भेजा। वह वहां शाही दीवान के
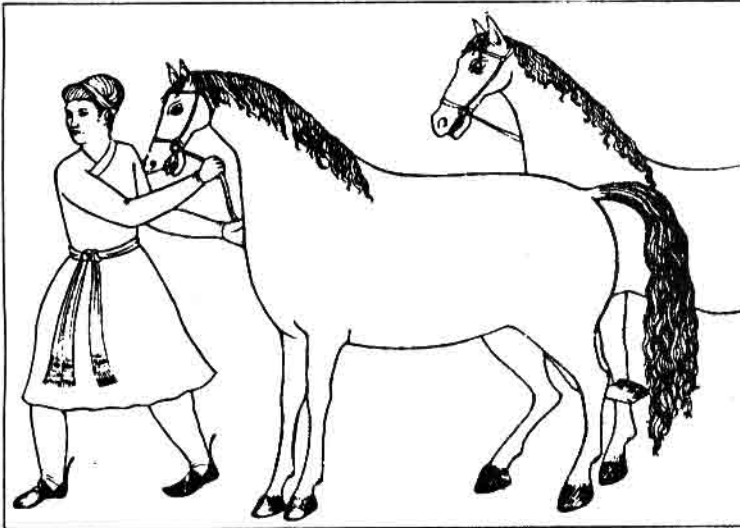
दफ्तर के चक्कर लगाता रहा क्योंकि वेतन का इंतज़ाम शाही दीवान ही करता था। शाही दीवान नाम का मनसबदार पूरे साम्राज्य की आमदनी और खर्च का हिसाब रखता था।

बाकर खान को जागीर मिली

मुग़लों के समय में अधिकारियों व कर्मचारियों को वेतन दो तरह से दिया जाता था। कुछ मनसबदारों को नगद में वेतन मिलता था। पर अधिकांश मनसबदारों को नगद में वेतन न मिल कर जागीर के रूप में मिलता था। जागीर का मतलब था - किसी क्षेत्र के लोगों से बादशाह का सारा कर वसूल कर के अपने पास रखने का हक।

जैसे, बाकर खान का वेतन 5,000 रुपए महीना था। घुड़सवारों के लिए उसे 1,500 रुपए अलग मिलते थे। इस तरह उसका मासिक वेतन..................रुपये बनता था (खाली स्थान भर दो)। साल भर में बाकर खान को 78,000 रुपए मिलने थे।

बाकर खान के वेतन के 78,000 रुपए का इंतज़ाम करने के लिए शाही दीवान ने मालवा सूबे के ऐसे 40 गांव छांटे जिनसे कुल मिलाकर 78,000 रुपए बादशाह को लगान में मिलने थे। ये 40 गांव देवास के पास थे। शाही दीवान ने देवास के इन 40 गांवों को बाकर खान की जागीर के लिए चुना।

शाही दीवान के कहने पर बादशाह जहांगीर ने एक फरमान जारी किया जिसमें लिखा था कि देवास के उन 40 गांवों का सारा लगान बाकर खान वसूल करके अपने वेतन के बदले में रख ले।

जिन मनसबदारों को जागीर में वेतन मिलता था उन्हें जागीरदार कहा जाता था। इस तरह बाकर खान जागीरदार बन गया, और आखिरकर उसके वेतन की व्यवस्था हो गयी।

एक बात सोचने की है। क्या बादशाह साम्राज्य के सारे गांव-शहर मनसबदारों को जागीर में दे देता था? अगर वह ऐसा करता तो बादशाह का अपना खर्चा किस तरह चलता? दरअसल बादशाह साम्राज्य की लगभग 25% लगान अपने लिए रखता था। राज्य के एक निश्चित इलाके के गांव शहर किसी को जागीर में नहीं दिए जाते थे। इस इलाके के गांव-शहरों की लगान बादशाह के अधिकारी वसूल करते थे और बादशाह को देते थे।

क्या जागीरदार अपनी जागीर की लगान में से कुछ हिस्सा बादशाह को देते थे? अपने उत्तर को कारण सहित समझाओ।

जागीर से लगान वसूल करने का इंतज़ाम

बाकर खान की पोस्टिंग रायसेन में थी पर उसे जागीर देवास में मिली थी। अब उसे अपना वेतन वसूल करने देवास जाना था।

मानचित्र नं 1 में देखो कि रायसेन से देवास कितनी दूर है।

जब बाकर खान को जागीर का फरमान मिला तो वह तुंरत देवास जाने की तैयारी करने लगा।

आमिल

उसके सामने एक समस्या थी। देवास के गांवों से लगान कैसे इकट्ठा करे? आखिर वह खुद हर गांव में जा कर लगान तो नहीं वसूल कर सकता था। बाकर खान एक ऐसे भरोसेमंद आदमी को ढूंढ़ने लगा जो उसके लिए गांव से लगान वसूल कर के ला दे।

कुछ दिनों में उसे एक ऐसा व्यक्ति मिला। वह था रायसेन के ही एक व्यापारी का बेटा बनारसी दास। बाकर खान ने बनारसी दास को अपना आमिल (यानी एजेन्ट) नियुक्त किया।

बाकर खान ने बनारसी दास से तय कर लिया कि लगान लाकर देने के बदले में बाकर खान उसे कुछ रूपए देगा। फिर बाकर खान ने बनारसी दास से दो हज़ार रुपए ज़मानत ले ली। क्योंकि, अगर बनारसी दास हिसाब में गड़बड़ करता या लगान लेकर ही भाग जाए तो बाकर खान का बेहद नुक्सान हो जाता। इसलिए बाकर खान ने पहले ही बनारसी दास से ज़मानत ले ली।

मनसबदार और उसका आमिल देवास की ओर चले। रास्ते में नावो पर बने पुल से एक नदी पार की

सारी बातें तय कर के बाकर खान और उसका आमिल बनारसी दास देवास के लिए रवाना हुए जहां जागीर के गांव थे। पहले वे दीवान नाम के अधिकारी से मिले।

दीवान ही उस इलाके के गांवों की लगान का सारा हिसाब रखता था।

दीवान ने बाकर खान को उसकी जागीर के 40 गांवो का पूरा ब्यौरा दिया। लगान का हिसाब बता कर दीवान बाकर खान से बोला, "जितनी लगान बादशाह ने तय की है उतनी ही वसूल करना। मुझे किसानो से किसी प्रकार की शिकायत नहीं मिलनी चाहिए। अगर ऐसी शिकायतें आयी तो मैं बादशाह को खबर कर दूंगा। वे तुम्हारें पद और वेतन में कटौती कर देंगे। हां, अगर किसी गांव के किसान लगान न चुकाएं तो फौज़दार से कह देना। वे तुम्हारी मदद के लिये सैनिक भेज देंगे।"

दीवान और फौज़दार नामक अधिकारियों से बात कर के बाकर खान और उसका आमिल गांव पहुंचे। उन्होंने गांवो के सारे ज़मीदारों, पटेलो व पटवारियो को बुलवाया और उनको जागीर का शाही फरमान दिखाया।

बाकर खान उनसे बोला, "बनारसीदास मेरा आमिल है। वह मेरी तरफ से आप सब से लगान इकट्ठी करेगा। आप लोग इसे पूरी सहायता देवें।"

इस तरह सारा इंतज़ाम कर के बाकर खान रायसेन लौट गया। बनारसीदास ने उसका वेतन गांवो से वसूल किया व उसे ला कर दिया।

तुम अगले पाठ में पढ़ोगे कि गांवों से आमिल लगान कैसे इकट्ठी करते थे और कैसे कई बार पूरी लगान वसूल नही हो पाती थी। अगर पूरी लगान वसूल नही हो पाती तो जागीरदारों को साल का पूरा वेतन नही मिल पाता था।

सेना का निरीक्षण

एक दिन आगरा से मीर बख़्शी का आदेश आया। दो महीने बाद बाकर खान को अपनी सेना ले कर आगरा बुलाया था। वहां बादशाह द्वारा उसकी सेना का निरीक्षण होना था।

तुम्हें याद होगा कि हर मनसबदार को कुछ निश्चित घुड़सवार रखने होते थे। बाकर खान को 100 घुड़सवार रखने थे। बादशाह देखना चाहते थे कि मनसबदार घुड़सवार रख रहे हैं या नही। इसलिए साल-दो साल में मनसबदारों की सेना का निरीक्षण होता था जिसमें उनके घोड़ों पर दाग़ या मुहर लगाई जाती थी। साथ

घोड़ो पर दाग़ लगाया जा रहा है

ही उनके सैनिकों का हुलिया (चेहरे का वर्णन) लिख कर आगरा में दर्ज़ किया जाता था। अगर निरीक्षण में मनसबदार अपनी पूरी सेना नही ले जाता तो दंड के रूप में उसके पद में कमी की जाती थी।

बाकर खान भी अपनी सेना लेकर आगरा पहुंचा। वहां बादशाह ने खुद मीर बख़्शी के साथ सेना का निरीक्षण किया। तभी घोड़ों पर दाग़ लगाये गये और सवारों का हुलिया दर्ज़ हुआ।

तबादला

मुग़ल साम्राज्य में सारे मनसबदारों का हर साल-दो साल में तबादला हो जाता था। मनसबदारों की जागीर भी बदलती रहती थी। इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण था। मुग़ल बादशाह नही चाहते थे कि उनके बड़े अधिकारी किसी एक क्षेत्र में अपनी ताकत और धाक जमा ले।

अगर कोई मनसबदार कई वर्ष एक ही जगह रहे तो क्या होगा? वह मनसबदार वहां के ताकतवर और प्रमुख परिवारों से रिश्ता बना लेगा। उनकी सहायता से वह बादशाह के खिलाफ विद्रोह भी कर सकता था। इसे रोकने के लिए मनसबदारों का और उनकी जागीरों का लगातार तबादला किया जाता था।

बाकर खान के कई तबादले हुए। कभी मुल्तान कभी आगरा, कभी अवध, कभी बंगाल उसे जाना पड़ा। साथ-साथ उसकी तरक्की भी होती गयी। 1627 तक आते-आते वह उड़ीसा सूबा का सूबेदार बन गया। तब वह एक बहुत बड़ा मनसबदार बन चुका था, यानी कि एक अमीर बन चुका था। उसकी तंख्वाह अब तीस हज़ार रुपये प्रति माह हो गई थी। उसे 5000 घुड़सवार रखने पड़ते थे - सो उनके लिए अलग से हर महीने 80,000 रुपये मिलते थे।

क) आज के अधिकारियों और मुग़लों के समय के अधिकारियों की तुलना करो।
उनमें तुम्हें किन बातों में समानताएं दिखी व किन बातों में फर्क दिखा - स्पष्ट करो
- नियुक्ति का तरीका
- निश्चित वेतन
- वेतन पाने का तरीका
- तबादला
- सेना रखने की ज़िम्मेदारी

ख) मुग़ल बादशाह अपने अधिकारियों की इन कामों पर किस तरह नियंत्रण रखते थे?
- सेना रखने की ज़िम्मेदारी
- लगान की वसूली।

मुगल अमीर का घर बार

बाकर खान को तीस हज़ार रुपये हर महीने मिलने लगे थे और वह भी ऐसे समय में जब एक रुपये में 40 किलो गेहूं मिले। बाकर खान इतने रुपयो का क्या करता होगा? चलो, ज़रा उसके घर बार को झांक कर देखें।

बाकर खान एक विशाल महल में रहता था। मगर बाहर सड़क से उसका महल नही दिखता था, ऊंची-ऊंची दीवारों से जो घिरा हुआ था।

बाहरी दीवार में एक दरवाज़ा था जिसमें 20-30

पहरेदार पहरे देते रहते थे। अन्दर एक विशाल बाग था जिसके बीच में बाकर खान का महल था। बाग के बीच से संगमरमर की बनी नहर थी जिसमें ठंडा पानी बहता रहता था। जगह-जगह सुन्दर फव्वारे भी थे। नहर के दोनों तरफ चलने के लिए रास्ते थे और उसके बाद चौकोर घास के मैदान जिसके अन्त में फूलों की क्यारियां और कतार में खड़े पेड़ थे।

बाकर खान का महल अधिकतर पत्थर का बना था। उसमें अनेकों बड़े कमरे थे। पूरे कमरे में ज़मीन पर कीमती कालीनें बिछी रहती थी। दीवारों में आले थे जिनमें चीन और ईरान से आये प्याले, सुराहियां रखे रहते थे। दीवार सुन्दर तराशे हुए पत्थरों की बनी थी। बाकर खान का खास कमरा संगमरमर का बना था जिसमें कीमती रंगीन पत्थरों को गाड़कर सुन्दर चित्र बनाये गये थे। छत चांदी और सोने से रंगी गयी थी। गर्मी के मौसम में ठंडक के लिए ज़मीन के नीचे कमरे बने थे।

मुग़ल अमीर के महल में उसकी पत्नियां

बाकर खान की चार बीवियों के लिए भी अलग-अलग घर बने थे। प्रत्येक बीवी की सेवा में 40-50 गुलाम रहा करते थे।

बाकर खान और उसकी पत्नियों को कीमती हीरे-मोती के जवाहरात का खास शौक था - दूर-दूर के व्यापारी ये चीज़ें बेचने आये दिन आते रहते थे। सुन्दर और कीमती कपड़ों और लिबासों की बात ही अलग थी। वे एक दिन पहना कपड़ा दूसरे दिन नही पहनते थे।

महीन से महीन मलमल के कपड़े, रंग बिरंगे रेशमी कपड़े, सोने-चांदी के ज़री के कपड़े - उनकी आम पोषाकें थी।

उनका भोजन भी उन दिनों का सबसे मंहगा भोजन था। शराब ईरान से और बर्फ कश्मीर से लायी जाती थी। उनके अपने बगीचे भी थे जिनमें देश विदेश के फल उगाये जाते थे।

उन दिनों के अन्य अमीरों की तरह बाकर खान को भी अजीबो-गरीब जानवर व पक्षी पालने का शौक था। ऊंट, हाथी और घोड़ों के अलावा कई शेर, चीते, हिरन, बाज़, रंग-बिरंगे तोते और मोर उसके महल में पलते थे। जानवरों को आपस में लड़ा कर लड़ाई देखना उनके लिए मनोरंजन का एक तरीका था।

बाकर खान के महल के पास ही उसका कारखाना भी था। मगर आजकल के कारखाने जैसा नही था। उसमें बाकर खान और उसके परिवार के उपयोग के लिए तरह-तरह की चीज़ें बनती थीं। कपड़े, कालीनें, सोने-चांदी के गहने, लकड़ी की चीज़ें, ये सब उनके अपने कारखाने में बनती थी। इन्हें बेचा नही जाता था। ये चीज़ें सीधे बाकर खान के घर में उपयोग की जाती थीं। इन कारखानों में शहर के मशहूर कारीगरों को अक्सर ज़बरदस्ती लाकर काम करवाया जाता था।

एक लाख रुपये जागीर से वसूल करने होते थे। इस काम के लिए बाकर खान के कई सारे आमिल

थे। इन आमिलो के काम पर निगरानी रखने, इकट्ठे किए पैसो का हिसाब लिखने आदि काम के लिए महल में कई मुन्शी और नौकर भी होते थे।

इतना बड़ा घर बार, इतने सारे नौकर चाकर, इन सब पर बहुत खर्च होता था। फिर समय-समय पर बादशाह, शहज़ादों और बड़े अधिकारियों को कीमती भेंट भी देनी पड़ती थी।

अपने ऊपर धन खर्च करने के अलावा बाकर खान जैसे मनसबदार आम लोगों की सुविधा की चीज़ें बनवाने में भी कुछ धन खर्च करते थे।

अपनी इस ऊंची तंख्वाह में से बाकर खान ने अपनी जागीर के आम लोगों के लिए दो मस्जिदें बनवाईं। उसने यात्रियों के ठहरने के लिए एक सराय भी बनवाई। अगर बाकर खान की जगह कोई राजपूत अमीर होता तो वह मन्दिर और पाठशालाएं बनवाता। ईरानी-तुरानी अमीरों की तरह राजपूत व शेखज़ादा अमीर भी बहुत ठाठ बाठ से रहते थे। उनके भी आलीशान महल थे, सैकड़ो नौकर चाकर थे, दास दासियां थी, कई पत्नियां थी। राजपूत मनसबदारों के आलीशान महल आज भी राजस्थान में देखे जा सकते हैं।

o o o o o o

अभ्यास के प्रश्न

1. बाकर खान को सरकारी नौकरी कैसे मिली? क्या आज भी सरकारी नौकरी उसी तरह मिल सकती है?
2. मनसबदारों की ज़मानत कौन देता था? ज़मानत क्यों ली जाती थी? क्या आज भी ऐसा होता है?
3. बाकर खान ने अपना आमिल किस काम के लिए नियुक्त किया? उसने उससे ज़मानत में पैसे क्यों लिए?
4. बाकर खान की सेना का निरीक्षण किस तरह हुआ और क्यों?
5. अगर तुम्हें बाकर खान का घर बार देखने का मौका मिलता तो तुम्हें जो-जो दिखता, उस पर 6 वाक्य लिखो।
6. तुमने कक्षा-7 में भोगपतियों के बारे में पढ़ा था। राजा अपने अधिकारियों को वेतन के बदले गांव भोग करने को देता था। भोग के गांव से वे मनचाहे कर वसूल सकते थे और इच्छानुसार शासन चलाते थे।
   भोग के गांव उसी अधिकारी व उसके वंशजों के पास रहते थे।
   मुग़ल राज्य के जागीरदारों और भोगपतियों के बीच तुम्हें क्या अन्तर और क्या समानताएं दिखती हैं? भोगपति या जागीरदार, दोनों में से किस पर राजा का ज़्यादा नियंत्रण रहता था?

उन दिनों दुनिया में सबसे अधिक वेतन पाने वाले अधिकारियों के जीवन की ये झलकियां तुमने देखीं। अब अगले पाठ में मुग़ल काल के गांवों की झलक देखो।

3

मुग़ल काल के गांव

मुग़लों के समय में भारत पूरी दुनिया में एक संपन्न देश माना जाता था। मुग़लों, राजपूतो और आफगानो ने इसी संपन्नता पर अधिकार जमाने की लड़ाई लड़ी थी। इसी संपन्नता के बल पर जागीरदार ज़मीदार और राजा-महाराजा ऐश-ओ-आराम की ज़िन्दगी बिताते थे। मुग़ल बादशाह लाल किला और ताजमहल जैसी इमारतें खड़ी करते थे। इसी संपन्नता को देखकर यूरोप से व्यापारी यहां आये।

मगर भारत की यह समृद्धि आसमान से तो नहीं टपकी। उसको किसानो ने खेतों में मेहनत से उगाया। मुग़ल साम्राज्य की ताकत और मुग़ल अमीरों की सपंन्नता का राज़ इन्ही खेतों में, इन्ही किसानों की मेहनत में छिपा हुआ था। इन किसानों की उपज लगान के रूप में मुग़ल बादशाह व जागीरदार लेते थे।

उन किसानो का जीवन कैसा था, उनके घर कैसे थे, वे क्या उगाते थे, वे कितना कर देते थे, कितना बचा पाते थे? चलो, इस पाठ में उन्ही किसानों के जीवन के बारे में पढ़ें।

गांव

चित्र-1 मुग़ल काल में बना गांव का एक चित्र है। इस चित्र को अकबर के समय में बनाया गया था। इस चित्र से तुम्हें उस समय के गांव के घर-बार, लोगों के पहनावे और काम के बारे में क्या-क्या बातें पता चलती हैं?

चित्र 2: यह चित्र जगन्नाथ नाम के चित्रकार ने बनाया था। इस चित्र में तुम्हें क्या-क्या चीज़े दिख रही हैं? इससे तुम्हें मुग़ल काल के गांवों में खेती के बारे में क्या बातें पता चलती हैं?

गांव में धनी लोग थे और निर्धन भी। एक साधारण किसान के घर का चित्र बिचित्र नाम के चित्रकार ने बनाया। यह घर किन चीजों से बना है?

आम किसानों के ऐसे ही कच्चे घर होते थे। युद्ध, अकाल, सूखे और अत्याचार के मारे भागने वाले किसान इन कच्चे घरों को पल में छोड़ कर भागते और पल मे नई जगह पर फिर से बना लेते।
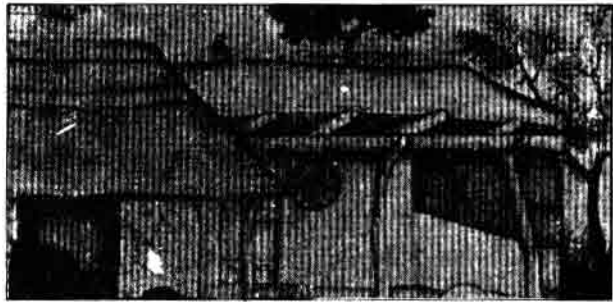
चित्र 3: साधारण किसान का घर

भोजन

अब आम किसानों की झोपड़ियों के अन्दर की झलक लें। मिट्टी के बने थोड़े से बर्तन ही मिलते। उन दिनों तांबा या पीतल महँगा था और अल्युमीनियम व स्टील का तो चलन ही नही हुआ था।

मिट्टी के उन बर्तनों मे कभी मूंग और चावल की खिचड़ी पकती और कभी बाजरे या ज्वार की रोटी सिकती। खाने के साथ में थोड़ी सी सब्ज़ी और घी भी हो जाता। उन दिनों दूध अधिक होता था इसलिए घी सस्ता था। घी के अलावा तिल और सरसों का तेल भी उपयोग में लाया जाता था।

उन दिनों घी अधिक क्यों होता होगा — चर्चा करो।

तब मूंगफली नही होती थी इसलिए उसका तेल भी नही मिलता था। तब बहुत सी ऐसी सब्ज़ियां भी नहीं होती थी जिन्हें तुम आज खाते हो।

मुग़ल काल तक भारत में आलू, कद्दू, टमाटर, मटर, हरी मिर्च, अमरूद, सीताफल उगते ही नही थे। ये सब दक्षिण अमेरिका की सब्ज़ियां व फल हैं जो मुग़ल काल के अन्त मे यूरोप के व्यापारी भारत लाए।

लेकिन सेम, पालक, शकरकन्द, तोरी, गिलकी, करेला, लौकी, भिण्डी, भटा जैसी सब्ज़ियां और केला, आम, कटहल, तरबूज़, बेर, अंगूर, अनार जैसे फल खूब होते थे।

उन दिनों लाल मिर्च तो नहीं थीं। तो वे लोग भोजन में मिर्च की जगह क्या खाते होंगे?

कपड़े और पहनावा

चित्र-3 को ध्यान से देखो तो दीवार पर एक चरखा टंगा दिखेगा।

उन दिनों घर-घर चरखा चलने लगा था। तुम जानते हो कि तुर्की-ईरानी लोगों के साथ चरखा भारत में आया। अकबर व जहांगीर के समय तक आते-आते चरखे का उपयोग लोगों ने खूब अपनाया। महिलायें घर-घर सूत कात लेती थी और गांव का जुलाहा कपड़ा बुन देता था। इस समय के पहले भारत के लोग कम कपड़ा पहनते थे। पर चरखे के चलन के बाद ज़्यादा मात्रा में कपड़ा पहना जाने लगा।

गांव के लोगों के चित्र मिस्किन नाम के चित्रकार ने बनाए। लोग कई तरह के कपड़े पहने दिख रहे हैं। ग्वाले, किसान, जोगी, बच्चे, औरतें व अन्य कई लोग हैं। जो बहुत गरीब थे और बहुत गरीब नहीं थे, वे लोग इन चित्रों में अलग-अलग पहचान में आ रहे हैं। चित्र को ध्यान से देख कर उन्हें पहचानो।

खेतीबाड़ी

आज की तरह मुग़ल काल में भी खेती की सबसे बड़ी समस्या सिंचाई थी। उन दिनों लोगों को तालाब, नहर और कुंओं से काम चलाना पड़ता था। आज की तरह मोटर पंप या बिजली तो नहीं थी।

इस कारण सिंचाई थोड़ी ही ज़मीन पर हो पाती थी। अधिक असिंचित ज़मीन थी। इसमें मुख्यतः बारिश (खरीफ) की फसल उगायी जाती थी।

रासायनिक खाद, दवा, नए बीज- इनके न होने से उत्पादन भी आज की तुलना में बहुत कम होता था। मगर उन दिनों भारत में जितना उत्पादन होता था उतना शायद यूरोप के देशों या किसी भी अन्य देश में नहीं होता था।

भारत में नदियों के मैदानों की मिट्टी अत्यधिक उपजाऊ है। इसका फायदा किसान बड़ी मेहनत और सूझबूझ से उठाकर साल में दो-दो फसल लेते थे। उन दिनों यूरोप के किसान प्रत्येक खेत से तीन साल में एक बार या दो

बार ही फसल ले पाते थे। यूरोप मे अधिकांश प्रदेशों में मिट्टी भारी और गहरी है। उसे पलटने के लिए भारी और खास तरह के हल की ज़रूरत होती है। ऐसे हल उन दिनों बने नही थे। इस कारण उन दिनो यूरोप के खेतों का उत्पादन भारत के मैदानों के उत्पादन से बहुत कम था।

भारतीय किसान हर साल दो फसल तो लेते ही थे- साथ ही भारत की गर्म जलवायु में इतनी विभिन्न किस्म की फसलें उगती थी कि यूरोपीय यात्री जो उन दिनों भारत आये, दंग रह जाते थे। एक ही गांव मे खरीफ में 15 तरह की फसलें और रबी में 10 तरह की फसलें उगायी जाती थी। इनके अलावा फल और सब्ज़ियां भी। उन दिनो शायद ही किसी और देश में इतनी विविध तरह की फसलें एक ही गांव में उगायी गयी हो। भारत की संपन्नता, जिसकी विश्व भर में चर्चा थी, का यही आधार था।

मगर इतना सब उगाने के बावजूद किसान बहुत गरीब थे। बहुत से बच्चे कुपोषण के कारण मौत के शिकार होते थे। हमेशा आम लोगों के सिर पर भूख मंडराती रहती थी।

किसानो की हालत

जब पर्याप्त वर्षा होती और फसल भी अच्छी होती थी तो किसान किसी तरह गुज़ारा कर लेते थे। लेकिन वे कठिन दिनो कि लिए कुछ भी नही बचा पाते थे। इसलिए जब बारिश कम हो जाती और भू-जल सूख जाता और फसल न उग पाती तो किसानों के पास गुज़ारा करने के लिए कुछ भी नही होता था। तब हज़ारों की संख्या में लोग भूख और महामारी के शिकार हो जाते। तब ऐसी हालत होती थी कि लोग घास व जंगली पेड़ो के पत्ते खाने लगते। यहां तक कि अपने आप को और अपने बच्चों को धनी लोगों के हाथ बेच देते थे। तब लोग खाने की तलाश में अपने गांव छोड़कर दर-दर भटकते थे। इस प्रकार सैकड़ों गांव वीरान हो कर उजड़ जाते थे। कभी-कभी ऐसे भयंकर अकाल का विवरण मिलता है जब मनुष्य, मनुष्य को खाने पर उतर आते थे।

यह है दास्तान मुग़ल काल के किसानों की- सारी संपन्नता उनके खेतों में पैदा होती थी और सारी दरिद्रता उन्हीं के घरों मे बसती थी।

तुम सोच रहे होगे कि यह कैसे- इतनी सारी फसल जो वे उगाते थे, उसका क्या होता था?

लगान

खेती की उपज का एक बहुत बड़ा हिस्सा लगान और करों के रूप मे किसानो के हाथों से छिन जाता था। अकबर के समय में किसानों से फसल का एक तिहाई भाग लिया जाता था। पर जहांगीर और शाहजहां के समय लगान का बोझ बढ़ता गया। सन् 1700 तक आते-आते किसानों की आधी उपज लगान में ली जाने लगी। तुम सोच सकते हो कि लगान देने के बाद और बीज का अनाज रखने के बाद कितना बचता होगा जिससे वे चैन से गुज़ारा भी कर सकें?

आओ, उन दिनों का एक गांव घूम कर देखें। बादशाह अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंगज़ेब के समय में गांव के लोगों पर क्या गुज़री जानें।

एक गांव की कहानी

(गांव करारिया, सूबा आगरा)

अब अनाज नही, रुपये मे देना है लगान

सूबा आगरा में बसा था गांव करारिया। गांव तो छोटा ही था- यही कुछ अस्सी-पचासी किसानों के घर थे। चार-पांच कारीगरों के घर भी थे, जो लकड़ी लोहे और चमड़े की चीज़ों को बनाते थे। कुछ कारीगर मिट्टी के बर्तन बनाते थे और कुछ कपड़े बुनते थे। अधिकतर किसान जाट जाति के थे, मगर कुछ गूजर भी किसानी करते थे।

सन् 1580 की बात थी। खरीफ की फसल खेतों मे लहलहा रही थी- बाजरा, ज्वार, मूंग, मोठ, तिल और कोदों। उन्ही दिनो पास के कस्बे बयाना से घुड़सवारो का एक दल गांव मे आया। आते ही वे सब ज़मींदार सूरज देव जाट के घर पहुंचे। कुछ ही देर में पूरे गांव मे खबर फैली कि ये लोग किसानों पर कर (लगान) तय करने आये हैं और हर किसान का खेत नापेंगे।

ज़मीदार के घर गांव के पटेल और पटवारी को बुलवाया गया। ये लोग गांव के प्रमुख और संपन्न किसान थे जो लगान इकट्ठा करने मे मदद करते थे।

शाम को पंचायत बुलायी गयी और पटेल के घर के सामने चौपाल में सब गांववाले इकट्ठा हो गये। बयाना से आया कर निर्णय करने वाला अधिकारी पूरणमल बोला, "हम लोग यहां अकबर बादशाह के मंत्री मुज़फ्फर खान और राजा टोडरमल के आदेश से आये हैं। बादशाह ने पूरे साम्राज्य में कर तय करने और वसूल करने की व्यवस्था को बदला है। इस वर्ष से आप लगान में अनाज नही, बल्कि पैसे देगे।"

यह सुनते ही लोगों मे खुसुर-फुसुर फैल गई। कुछ देर बाद एक किसान उठकर बोला, "मगर अब तक तो हम अनाज में ही लगान देते आये हैं।" पूरणमल बोला, "आप लोग बयाना में अपनी फसल बेचकर उस पैसे से लगान दीजिए।"

ज़मीदार सूरज देव किसानों को समझाता हुआ बोला, "परेशान क्यों होते हो? पहले भी तो फसल का एक तिहाई ही देते थे। अब भी उतना ही देना है मगर अनाज में नहीं, पैसों में।"
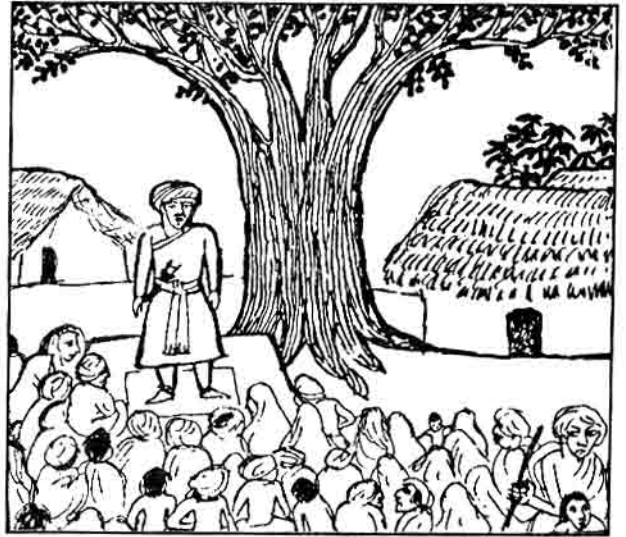
चित्र 5: चौपाल में चर्चा

एक किसान बोला, "हमने सुना था कि अकबर बादशाह अच्छे हैं तो सोचा शायद लगान कम करेंगे। अब तो मुसीबत बढ़ा दी।"

> *किसमें बदलाव किया गया— लगान की मात्रा में या लगान के रूप में?*
> *मुग़ल काल के किसानो की तुलना में आजकल किसानों पर लगान अधिक है या कम?*
> *अनाज के बदले रूपयों में लगान लेने से जागीरदार को क्या फायदा हुआ होगा?*

किसान बंजारो को अनाज बेच आये

उस वर्ष गांव के सारे किसान गाड़ियों में अनाज लादकर बयाना ले गये।

आसपास के बहुत से गांव के किसान भी अपना अनाज ले आये। बयाना में इस साल पहले से कही अधिक अनाज बिकने आया।

उन दिनों बंजारे (व्यापारी) ही अनाज का व्यापार करते थे। तीस चालीस बंजारों का झुण्ड 200-300 बैलों के साथ जगह-जगह घूमता रहता था। गांवों से अनाज, शक्कर व गुड़ खरीदकर दूर-दूर के शहरों में जाकर बेचते थे। वे हिमालय के पहाड़ों से शुरू करके, खरीदते बेचते खम्भात, बंगाल और दक्षिण भारत तक जाते थे।

इन्हीं बंजारों के हाथ सब किसान अपनी-अपनी फसल बेच आये। कुछ अनाज के बदले में बंजारों से नमक ले आए और बाकी अनाज के बदले में पैसे लेकर लौटे- लगान जो देना था।

लगान की वसूली

कुछ दिन बाद जागीरदार का आमिल गांव में आ पहुंचा।

क्या तुम्हें याद है आमिल कौन था और वह क्या काम करता था?

आमिल ज़मीदार सूरज देव जाट के घर गया और उससे कहा कि वह गांव वालों से लगान जमा करके रखे। आमिल ने बताया, "आपके गांव के कुल 9,000 बीघे पर खरीफ की फसल बोयी गयी है। मैंने पटवारी के साथ हिसाब लगाया है, कुल मिला कर 17,000 रूपये बनते हैं। आप यह रकम इकट्ठा करके रखिए। मैं अपने जागीरदार के दूसरे गांवों में भी चक्कर लगाकर आता हूं। दस दिन में लौटूंगा तो आप से रूपये ले लूंगा।"

ज़मीदार सूरज देव जाट ने पटवारी और पटेल को बुलाया और उनसे किसानों से लगान इकट्ठा करने को कहा।

चित्र 6 : बंजारों की टोली

पटवारी बोला, "अगर कोई देने से इन्कार कर दे तो?"

ज़मीदार बोला, "मेरे दो घुड़सवार और चार सिपाही आपके साथ चलेंगे - देखते हैं किस की हिम्मत है मना करने की।"

लगान इकट्ठा करने में तीन-चार दिन लग गए। कुछ किसानों के

इस धमकी से किसान डर गए। चुपचाप अपने घर लौट आए। एक महीना ही बीत पाया था कि उनमें से एक परिवार रातों-रात गांव से भाग निकला और खूब खोजबीन के बाद भी उसका पता न चला।

गांव के पटेल ने लोगों को जाने से रोका। उसने ऐसा किस के भले के लिए किया?
ज़मीदार सिपाही रखते थे। इन सिपाहियों के काम के बारे में तुम अब तक क्या समझ पाए?

खेत बिन बोए न रहे

मुग़लों के समय में ज़मीन बहुत खाली पड़ी थी। जो जितनी चाहे ज़मीन जोत सकता था। इसी कारण दुख दर्द के मारे किसान गांव छोड़ कर दूसरी जगह पर खेती करने की आशा में अक्सर चले जाते थे। इस बात से जागीरदार व ज़मीदार परेशान रहते थे। वे तो यही चाहते थे कि उनके इलाके में ज़्यादा से ज़्यादा किसान आकर बसें और ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीन पर खेती करें। इसीलिए वे नए आए लोगों को ज़मीन देते थे और लगान में छूट भी।

वे अपने इलाके से भाग कर जाते हुए किसानों को रोकने की भी भरपूर कोशिश करते थे। मगर वे किसान को भागने से न रोक पाएं तो किसी दूसरे किसान को उसके खेत जोतने के लिए दे देते थे ताकि फसल हो और लगान पूरी भरी जा सके।

हां, यह ज़रूर था कि अगर ज़मीन का मालिक लौट आता तो उसे उसकी ज़मीन वापस मिल जाती थी। पर उसकी गैर-हाज़िरी में उसके खेत बिन बोए नही रह सकते थे। क्योंकि अगर ऐसा होता और लगान पूरी न मिलती तो जागीरदारों, ज़मीदारों और बादशाह का काम कैसे चलता? बाकर खान जैसे अमीरों का क्या होता ?

क्या इस स्थिति की कोई बात आज भी देखने को मिलती है?

शासन करने वाला वर्ग

मुग़ल साम्राज्य में दिन-ब-दिन बाकर खान जैसे बड़े अमीरों की संख्या बढ़ रही थी। अकबर का शासन जब शुरू हुआ तो केवल 51 बड़े अमीर थे। यह संख्या लगातार बढ़ती गई और सन् 1700 में 500 से ज़्यादा बड़े अमीर हो गए।

आखिर इन सबका खर्चा कहां से निकलता?

करारिया में भी कर बढ़े

बादशाह शाहजहां और औरंगज़ेब के समय तक आते-आते लगान बहुत बढ़ गया। अकबर के समय किसान फसल का 1/3 हिस्सा लगान में देते थे। अब उन्हें फसल का आधा हिस्सा लगान में देना पड़ा। जागीरदार इससे भी अधिक कर वसूल करने की कोशिश में थे।

सन् 1665 की बात होगी। मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब ने करारिया गांव राजा जय सिंह को जागीर में दिया हुआ था। जय सिंह मुग़ल साम्राज्य का एक प्रमुख अमीर था।

खरीफ की फसल कटते ही राजा जय सिंह का आमिल लगान वसूल करने गांव पहुंचा। उसने जाते ही ज़मीदार से कहा, "इस बार एक नया लगान लिया जाएगा। पटवारी का भत्ता किसान देंगे, जागीरदार नही देगा।"

यह सुनते ही ज़मीदार भड़क उठा। बोला, "यह कैसे हो सकता है? जिस तरह आप किसानों से कर ले रहे हैं उनके पास खाने के लिए भी नही बचता है। स्थिति यह बनती जा रही है कि हम किसानों से वो कर तक वसूल नही कर पा रहे हैं जो हमेशा

से हमारा हक रहा है। आप जाइए, अपने जागीरदार को बता दीजिए- इस गांव के लोग यह नया कर नही देगे।"

तुम जानते हो कि ज़मीदारों को किसानो से कम लगान देनी पड़ती थी। उन्हें किसानो से इकठ्ठी की गई लगान मे से एक हिस्सा भी मिलता था। उल्टे वे खुद किसानों से कई तरह की वसूलिया करते थे।

पुराने समय के भोगपतियों की तरह (जिनके बारे में तुम कक्षा-7 मे पढ़ आए हो) ज़मीदार समय-समय पर किसानों से उनके घर पर, ढोर पर, शादी-ब्याह पर, यात्रा पर, त्यौहार पर- कुछ न कुछ वसूल करने के आदी थे।

ज़मीदार ने आमिल का विरोध किस के भले के लिए किया?

पंचायत में भी किसानों ने आमिल को बहुत सुनाया और कहा कि आसपास के क्षेत्र में कोई यह नया कर नही देता तो वे क्यो दें? इतना सब सुन कर भी आमिल अटल रहा और यह धमकी देते हुए लौटा कि अगर करारिया से पटवारियों का भत्ता नही मिला तो फौज लाकर तबाही मचा देगा।

अगले दिन पंचायत में गांव वालो ने तय किया कि वे शिकायत करने राजा जय सिंह के पास आगरा जाएंगे। उन्होंने आसपास के कई गांव के लोगों को साथ कर लिया और करीब 20 लोग आगरा पहुंचे।

किसानो ने जागीरदार से शिकायत की

राजा जय सिंह के आलीशान महल में किसानो ने अपने हालात सुनाए। एक किसान बोला, "महाराज, पिछले साल मेरे खेत मे 50 मन ज्वार उगा। 25 मन आमिल लगान मे ले गया। ज़मीदार ने अलग से 7 मन ले लिए। फिर पिछला बकाया बता कर आमिल ने 5 मन और ले लिए। इसके ऊपर गांव के महाजन ने 2 मन वसूल कर लिए क्योंकि पिछले साल मुझे उससे बीज के लिए उधार लेना पड़ा था। अब इस वर्ष एक नया कर लगाया जा रहा है। हम कहां से देंगे और देंगे तो खाएंगे क्या?"

इस तरह की बातें सुन कर जागीरदार नया कर हटाने को राज़ी हो गया और बोला कि वह आमिल को मना कर देगा। किसान राहत की सांस लेकर गांव को चले।

पर अगले ही वर्ष राजा जय सिंह का तबादला हुआ और एक नया जागीरदार आया। उसके आमिल ने फिर से नया कर वसूल करने की कोशिश की।

चित्र 7 : जागीरदार से शिकायत
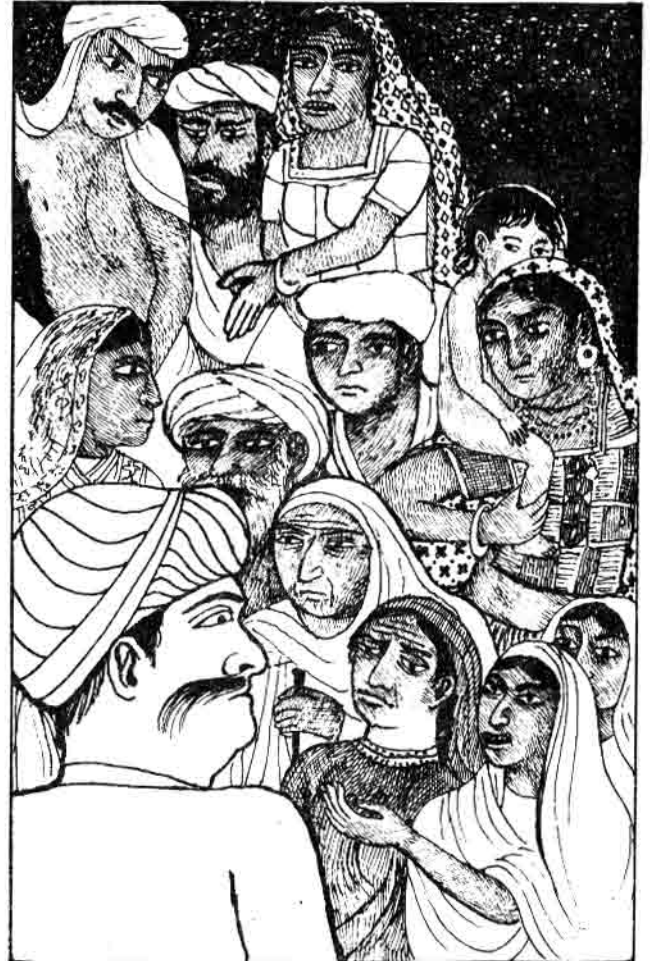
जब ऐसा हुआ तो करारिया गांव के 40 परिवार गांव छोड़कर दूसरे गांव चले गये।

किसानों ने बादशाह से फरियाद की

इस तरह देहली, आगरा, बयाना और आसपास के गांवों में स्थिति लगातार बिगड़ती गयी। सब तरफ जागीरदारों और उनके आमिलों की ज़्यादतियां बढ़ गई थी। कई गांवों के किसान फरियाद लेकर बादशाह औरंगज़ेब के पास भी पहुंचे।

बादशाह ने उन्हें वादा तो किया कि उनकी रक्षा की जायेगी, मगर वह अपने जागीरदारों के खिलाफ कुछ नही करना चाहता था। उसने केवल अपने अधिकारियों के नाम कई फरमान जारी किए कि ग़ैर कानूनी करों को वसूल न किया जाये। किसी भी हालत में किसान से आधी उपज से अधिक न ली जाये, उन्हें खेती बढ़ाने में सहायता दी जाये। मगर कोरी बातों को कौन मानने वाला था?

मुग़ल शासन के खिलाफ ज़मींदारों का विद्रोह

इस बीच करारिया गांव में खबर पहुंची कि मथुरा के पास गोकुल जाट नामक एक ज़मींदार ने बादशाह के खिलाफ विद्रोह कर दिया है और आसपास के गांव के किसान उसके साथ हो लिए हैं। करारिया गांव का ज़मींदार भी उनके साथ होने की बात सोचने लगा। मगर उसे डर भी था- आखिर मुग़ल सेना का सामना कैसे करें। कुछ ही दिनों बाद यह खबर आयी कि मुग़ल सेना से युद्ध में गोकुल जाट मारा गया। इस तरह समय बीतता गया। कही एक-दो ज़मींदार विद्रोह करते, कही गांव वाले गांव छोड़कर भाग जाते और कही वे विद्रोही ज़मींदारों के साथ हो जाते।

किसानों को तो मुग़ल शासन (यानी जागीरदार और बादशाह) से यह शिकायत थी कि उनसे हद से ज़्यादा लगान लिया जाता था।

पर ज़मींदारों को भी मुग़ल शासन से क्या यही शिकायत हो सकती थी?

फिर ज़मींदारों ने मुग़ल शासन की खिलाफत क्यों की?

इन प्रश्नों पर विचार करो:
अगर मुग़लों का शासन न होता तो क्या ज़मींदारों को ज़्यादा लाभ मिलता?
किसानों ने मुग़ल शासन से लड़ने वाले ज़मींदारों का साथ दिया, क्या यह उनके हित में था? समझा कर बताओ।

ज़मींदार राजा राम जाट का विद्रोह

गोकुल जाट के मरने के 14 साल बाद फिर एक विद्रोह की लहर चली। करारिया गांव से कुछ 30 किलोमीटर दूरी पर सिनसिनी नाम के गांव के ज़मींदार ने सन् 1683 में मुग़ल शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। उसका नाम था राजा राम जाट। उसने किसानों से वसूल किया लगान जागीरदार को देने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह अपना स्वतंत्र राज्य बनाना चाहता था। करारिया और आसपास के गावों में हलचल मची थी। खबर थी कि जागीरदार नवाब खान-ए-जहान सिनसिनी की तरफ बढ़ रहा है। आमेर के राजा बिशन दास ने भी अपनी सेना खान-ए-जहान की सहायता के लिए भेजी है।

इस बीच एक दिन करारिया गांव में सिनसिनी से कुछ किसान आ पहुंचे। करारिया गांव में भी उनके रिश्तेदार थे। उनके यहां वे आकर रहे। उसी दिन शाम को उन्होंने सारे गांव वालों को बुलाया और उन्हें सिनसिनी और राजा राम जाट की बातें बताई। उन्होंने कहा, "अब की बार तो हम इन जागीरदारों के दांत खट्टे करके ही रहेंगे। चाहे कोई नवाब आये या आमेर का राजा। आप लोग भी हमारी मदद कीजिए।" एक किसान ने कहा, "हमें मुग़लों की फौज से लड़ने के

चित्र 8 : किसान विद्रोह में शामिल होने निकल पड़े

लिए नौजवान चाहिये। आपके गांव से अगर दस नौजवान भी इकट्ठे हों तो बहुत सहायता होगी।"

तुरन्त भीड़ में से एक आवाज़ आई, "मैं तैयार हूं। मैं सिनसिनी चलूंगा मुग़ल फौज से लड़ने।" इतने में कई और आवाज़ें उठीं, "हां, मैं भी चलूंगा।" इस तरह 22 लोग तैयार हुए। उसी रात को वे गांव से अपनी-अपनी पोटलियां बांध कर और अपनी-अपनी तलवारें और भाले लेकर र ा म जाट की सेना में शामिल होने चले।

इस तरह पन्द्रह-बीस दिन गुज़र गये। एक दिन सिनसिनी जाने वालों में से एक लड़का घोड़े पर हांफते हुए करारिया आ पहुंचा। वह गांव के बीच खड़े होकर चीख-चीखकर बोलने लगा, "सुनो-सुनो गांव वालो, सुनो, हमने कैसे नवाब खान-ए-जहान और आमेर राजा बिशन दास की सेनाओं को हराया। सुनो हमने कैसे जागीरदारों और फौजदारों को भगाया।"

गावं वाले इकट्ठे हुए तो उसने पूरी बात बतायी। राजा राम जाट की सेना ने नवाब खान-ए-जहान के दो हमलों को पीछे कर दिया था। नवाब की बुरी हालत हो गयी और वो भाग खड़ा हुआ था। गांव में खुशी और आश्चर्य की लहर चल पड़ी।

क्या मुग़लों की फौज को जाट किसानों ने हराकर भगा दिया? यह कैसे हो सकता है? सब लोग ज़मींदार सूरज देव को मनाने उसके घर की ओर चले, कि वो भी राजा राम जाट के साथ हो जाये।

तो इस तरह शुरू हुआ करारिया गांव वालों का विद्रोह। इस विद्रोह और कई ऐसे विद्रोहों की वजह से मुग़लों का शासन लड़खड़ाने लगा। उन्हें लगान मिलना बंद होने लगा। एक-एक रुपया वसूल करने के लिए उन्हें लड़ना पड़ा।

अभ्यास के प्रश्न

1. मुग़लो के समय में यूरोप की खेती और भारत की खेती मे क्या फर्क था?
2. लगान लेने की नई व्यवस्था में क्या बातें बदली और क्या बातें पहले जैसी रहीं - सूची बनाओ।
3. करारिया गांव का ज़मीदार सूरज देव जाट जागीरदार के आमिल की किस प्रकार से मदद करता था?
4. क) करारिया के पटेल ने गांव छोड़ कर जाने वाले तीन किसानो को किस तरह रोका और क्यों?

   ख) मुग़ल काल मे अगर कोई किसान गांव खेत छोड़ कर चला जाता था तो उसकी ज़मीन का क्या किया जाता था? कारण भी समझाओ।
5. ज़मींदार किसानो से क्या लेते थे? जब जागीरदार ज्यादा कर लेने लगे तो ज़मीदार को परेशानी क्यो हुई?
6. किसान अपनी समस्याएं सुलझाने की कई कोशिशे करते थे। तुमने इन कोशिशो के क्या उदाहरण पाठ मे देखे?
7. क) राजा राम जाट ने किसके खिलाफ विद्रोह किया और क्यों?

   ख) करारिया गांव के कुछ लोग राजा राम जाट की सेना मे शामिल होने क्यों गए?

जहांगीर के दरबार में गोवर्धन नाम का चित्रकार था। उसने ऐसा एक चित्र बनाया। एक गांव के बाहर कुछ लोग चलते फिरते गवैयो के गायन का रस ले रहे हैं। कुछ दूरी पर गांव दिख रहा है।

क्या यह गांव आज के गांवों जैसा दिखता है?

इस चित्र में और क्या-क्या बातें तुम्हें दिख रही हैं?

इस चित्र में जो लोग है वे क्या-क्या काम धंधे करते होंगे?
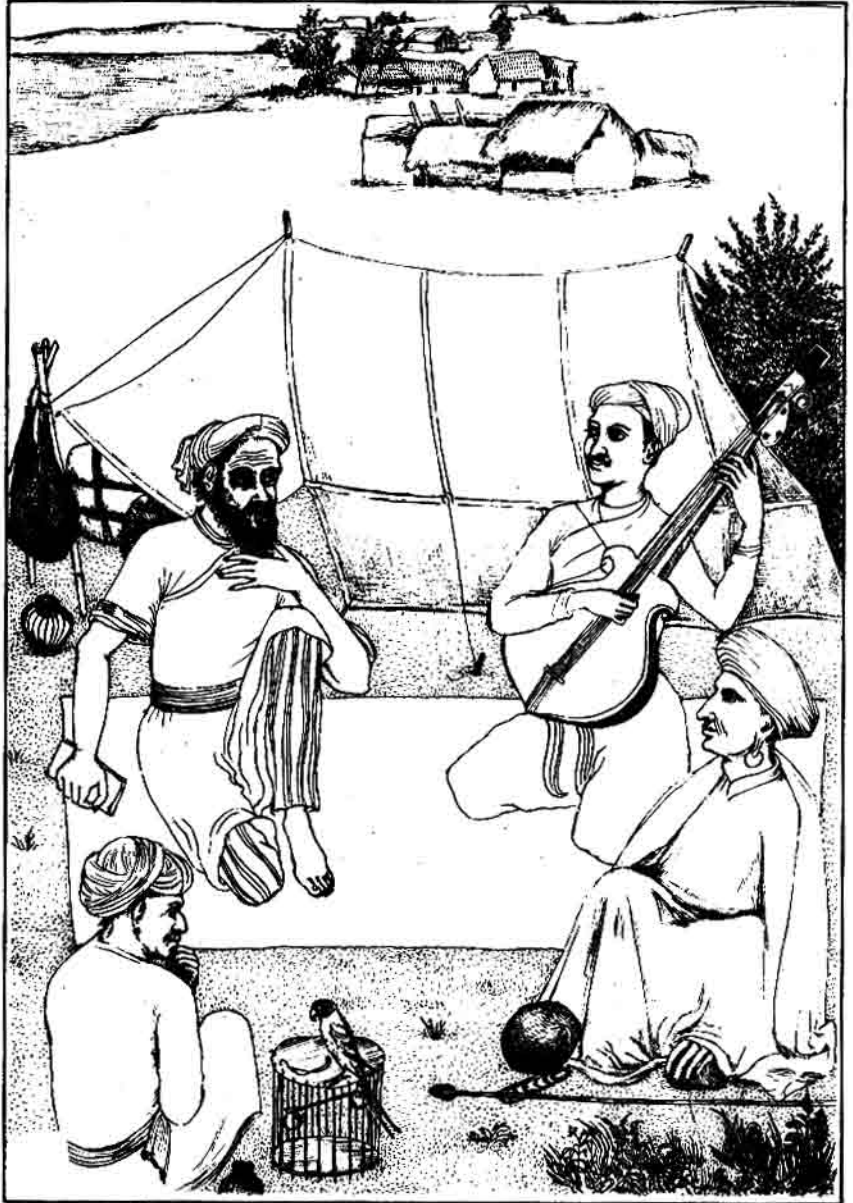
4 बादशाह औरंगज़ेब का समय
(सन् 1658 - 1707)

औरंगज़ेब बादशाह बना

सन् 1658 मे बादशाह शाहजहां बुरी तरह से बीमार पड़ गया। सब लोग यह मानने लगे कि बादशाह की कुछ ही दिनों में मृत्यु हो जायेगी। शाहजहां के चार पुत्र थे - दारा, औरंगज़ेब, शुजा और मुराद। चारों भाई खुद बादशाह बनना चाहते थे। आगरा में शाहजहां ने बड़े बेटे दारा को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। मगर उसके बाकी तीन बेटों ने इस बात को नहीं माना। सब अपनी-अपनी सेना लेकर तख़्त हथियाने के लिए आगरा की ओर चल दिए। भाइयों के बीच कई युद्ध हुए और अंत में औरंगज़ेब सफल रहा।

अपने पिता शाहजहां के जीते जी औरंगज़ेब ने अपने आप को बादशाह घोषित कर लिया और उनको उनकी मृत्यु तक 12 वर्ष कैद में रखा। इसके कारण औरंगज़ेब को काफी आलोचना का सामना करना पड़ा।

इन शब्दों के मतलब बताओ - 1. उत्तराधिकारी 2. तख़्त हथियाना 3. आलोचना

किसानों-ज़मीदारों के विद्रोह और लगान में कमी

हर बादशाह की तरह औरंगज़ेब को भी कई समस्याओं से जूझना पड़ा।

एक बड़ी समस्या तो किसानों और ज़मीदारों की तरफ से थी। तुम जानते हो, आगरा और बयाना के आसपास के जाट किसान और ज़मीदार विद्रोह करने लगे थे। इस तरह के छोटे-बड़े कई विद्रोह साम्राज्य में जगह-जगह होने लगे।

पंजाब में कई किसान, कारीगर और व्यापारी सिख धर्म को मानते थे, जिसमें यह सिखाया जाता था कि सब इंसान बराबर हैं। सिख गुरु, गुरु तेग़ बहादुर गांव-गांव में जाकर लोगों के बीच सिख धर्म का प्रचार करते थे। इस माहौल में किसानों में जागीरदारों व राजाओं का सामना करने का साहस बन रहा था। इससे शासन को डर बन गया कि कहीं किसान भड़क न जाएं।

गुरु तेग़ बहादुर के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए औरंगज़ेब ने उन्हें देहली लाकर बन्दी बना लिया। कुछ समय बाद देहली में उन्हें मार डाला गया।

इसके बाद उनके पुत्र गुरु गोविंद सिंह ने सिखों की सेना बनायी और वे पंजाब के राजाओं से टक्कर लेने लगे। ये राजा मुग़ल राज्य के अधीन थे। औरंगज़ेब ने इन राजाओं की पूरी मदद की, और सिखों को दबा के रखा। मगर आने वाले समय में सिख फिर से एक बड़ी सेना के साथ मुग़लों का मुकाबला करने लगे।

मुग़ल साम्राज्य के उत्तर पश्चिम में अफग़ान कबीले रहते थे। ये कबीले इस्लाम धर्म के रोशनिया संप्रदाय को मानते थे। ये कबीले मुग़लों से स्वतंत्र होकर अपना अलग राज्य बनाना चाहते थे। उन्होंने सन् 1665 से विद्रोह करना शुरू किया। औरंगज़ेब ने राजपूतों की मदद से रोशनिया लोगों के विद्रोह को दबाया।

ये औरंगज़ेब के समय में होने वाले कुछ बड़े विद्रोह थे। मगर इनके अलावा कई और छोटे-छोटे विद्रोह भी हुए। इन विद्रोहों के कारण जागीरदारों को अपनी जागीरों से कम लगान मिलने लगा।

जागीरों की कमी

मुग़ल राज्य में अधिकारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। पर अब उनके लिए पर्याप्त जागीरें नहीं थी। इतने सारे अमीरों को वेतन में बड़ी-बड़ी जागीरें देने के लिए राज्य में गांव-शहर कम पड़ने लगे थे। जो थे, उनसे भी लगान कम मिल रही थी।

जागीरों की कमी के कारण जागीरदारों में असंतोष और तनाव बढ़ने लगा। औरंगज़ेब कहता था - "मेरी स्थिति एक ऐसे वैद्य जैसी है, जिसके पास एक अनार है और सौ बीमार व्यक्ति हैं। वह उस एक अनार को किस-किस को दे।"

इस स्थिति से बचने का एक विकल्प था जागीरों के अंदर ही खेती बढ़ाना। आखिर इसी तरह जागीरदारों की आमदनी बढ़ सकती थी। पर जागीरदारों को इस काम में कोई रुचि नहीं थी, क्योंकि उनकी जागीर का तबादला होता रहता था।

साम्राज्य फैलाने की कोशिश

औरंगज़ेब के सामने जागीर की कमी से निपटने के लिए एक और विकल्प था। वह था अपने साम्राज्य का विस्तार करना और दूसरे राज्यों को अपने राज्य में मिला लेना।

मुग़ल साम्राज्य के पूर्व में अहोम राज्य था। यह आज के असम राज्य में था। 1663 में औरंगज़ेब के एक अमीर - मीर जुमला ने अहोम राजा को हराकर उसके राज्य को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया। मगर कुछ ही वर्षों में अहोम राजा मुग़ल सेना को अपने राज्य से भगा पाया और फिर से स्वतंत्र हो गया।

औरंगज़ेब के समय में दक्षिण में दो महत्वपूर्ण राज्य थे - बीजापुर और गोलकुंडा। इन दोनों राज्यों को सन् 1686-7 में औरंगज़ेब ने हराकर मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार मुग़ल साम्राज्य अफ़ग़ानिस्तान से लेकर तमिलनाडू तक फैल गया। इस

औरंगज़ेब

समय मुग़ल साम्राज्य अपनी शक्ति और विस्तार की चरम सीमा पर पहुंच गया।

नक्शे में देखो, सन् 1707 में मुग़ल साम्राज्य कहां से कहां तक फैला था?

बीजापुर और गोलकुंडा इतने ताकतवर थे कि सिर्फ सेना के बल पर उन्हें हराया न जा सकता था। दक्षिण के राज्यों को हराने के लिए उन राज्यों के प्रमुख सेनापति व अधिकारियों को ऊंचे पद व जागीरें दी गयी। ये अमीर मुग़लों के साथ हो गये और इस प्रकार औरंगज़ेब बीजापुर और गोलकुंडा जैसे ताकतवर राज्यों को हरा पाया। अब जितना लगान उन दो राज्यों से मिलता उतना ही वहां के अमीरों व अन्य नये अमीरों पर खर्च होने लगा। इस प्रकार राज्य जीत कर मुग़लों को बहुत फायदा नहीं हुआ और पुराने अधिकारियों के लिए जागीरों की कमी पड़ती रही।

खेती फैलाने की कोशिश और राज्य फैलाने की कोशिश दोनों ही से जागीरों की कमी की समस्या का हल नहीं निकल पाया। औरंगज़ेब के समय में और उसके बाद भी मुग़ल अमीरों को देने के लिए जागीरों की कमी पड़ती रही।

सन 1707 में मुगल साम्राज्य

अफगान कबीले

भारत की वर्तमान बाह्य सीमा

देहली

सिनसिनी

आगरा

बयाना

सूरत

पुणे

गोलकुण्डा

बीजापुर

संकेत

— — —	मुगल साम्राज्य की सीमा
•	शहर

1 से.मी. = 200 कि. मी.

0 100 200 300 400 500 km

राज्य का विस्तार करके भी जागीर की समस्या हल क्यों नहीं हुई - अपने शब्दों में कहो।

शिवाजी और मराठे

तुमने पढ़ा कि कैसे अफ़ग़ान कबीले, जाट ज़मींदार और अहोम राजा अपना अलग राज्य बनाना चाहते थे और मुग़लों की हुकूमत को स्वीकार नहीं कर रहे थे। दक्षिण भारत में भी औरंगज़ेब को एक ऐसी ताकत से भिड़ना पड़ा जिसे जीतना आसान न था।

ये थे महाराष्ट्र और कर्नाटक क्षेत्र में रहने वाले मराठे लोग। वे अच्छे सैनिक थे और उन्हें बीजापुर, गोलकुंडा व मुग़ल राज्य की सेनाओं में भर्ती किया जाता था।

एक मराठा सेनापति था शाहजी भोंसले। उसका बेटा था शिवाजी। शाहजी ने शिवाजी को अपनी एक जागीर - पुणे दे रखी थी। शिवाजी साहसी था और सोचता था कि वह दूसरे राजाओं की सेवा क्यों करे? खुद का राज्य क्यों नहीं बना ले? मराठों का अलग राज्य बनाने का उद्देश्य लेकर शिवाजी 18 साल की उम्र से ही एक सेना इकट्ठी करने लगा।

वह आसपास के ज़मींदारों के किलों पर हमला बोल कर उनके किलों को लूट आता था। धीरे-धीरे उसने कई किलों को अपने कब्ज़े में कर लिया।

इस बीच दक्षिण भारत में मुग़लों का राज्य भी फैल रहा था। शिवाजी को मुग़ल सेना से भी टक्कर लेनी पड़ी। शिवाजी ने अपनी छोटी-सी सेना के बल पर कई बार मुग़लों की विशाल सेनाओं को हराया।

ऐसी बड़ी सेनाओं से लड़ने का उसके पास एक निराला तरीका था। वह दुश्मन से सीधे न लड़कर उस पर अचानक हमला करके क्षति पहुंचाता और भाग जाता था। उसकी सेना बड़ी तेज़ी से एक जगह से दूसरी जगह पहुंच पाती थी, जबकि मुग़ल सेना बड़ी लंबी-चौड़ी होने के कारण धीरे-धीरे चलती थी। बार-बार अचानक हमले करके शिवाजी मुग़ल सेना को थका देता और फिर सीधे टक्कर लेकर उन्हें हराता था। इसे छापामार युद्ध कहा जाता है।

मराठा राज्य

शिवाजी महाराष्ट्र में अपना राज्य बनाने में सफल हुआ। पर उसे अपना राज्य बढ़ाने के लिए लगातार

शिकार करता औरंगज़ेब
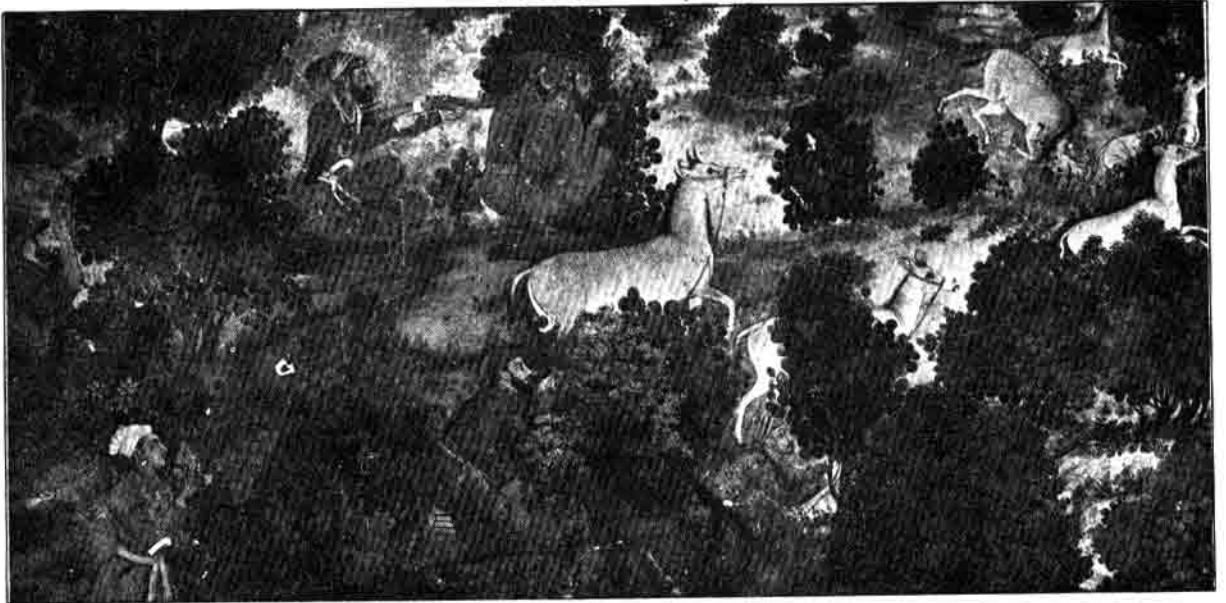
शिवाजी

आसपास के अन्य राज्यों पर हमला करना पड़ता था। उसे बड़ी ताकतवर सेना रखने की ज़रूरत थी और इसके लिए धन चाहिए था। उसने अपने राज्य के किसानों से लगान वसूल करने की व्यवस्था की। इसके अलावा और अधिक धन की व्यवस्था करने के लिए उसने दूसरे राज्यो के किसानो व व्यापारियो से धन वसूल करने की कोशिश भी की। उसने दूसरे राज्यों के लोगों से यह मांग की कि जितनी लगान वे अपने राजा को हर साल देते हैं, उसका एक चौथाई हिस्सा अलग से शिवाजी को सौंपें। इस लगान को चौथ कहा जाता था। दूसरे राज्यों के कई गांव-शहरों के लोग मराठों को चौथ देने पर मज़बूर थे क्योंकि वे मराठा सैनिकों के हमलो से डरते थे। जो लोग चौथ नही देते थे उन्हें हर साल मराठा सैनिको के हमलों का सामना करना पड़ता था।

चौथ से मिला धन मराठा सेनापतियों यानी सरदारो के बीच बांट दिया जाता था। ये सरदार ही शिवाजी के राज्य के अलग-अलग हिस्सो पर शासन करते थे।

मराठा सरदारों के हमलों का सामना करते-करते मुग़ल सेना थक गयी। इन्हीं मुकाबलों के दौरान औरंगज़ेब के जीवन का अंत भी हो गया।

मराठों के बारे में छह महत्वपूर्ण वाक्य रेखांकित करो।

चौथ क्या थी, सही विकल्प चुनो-

क. अपने राज्य के किसानों से ली गयी लगान।

ख. दूसरे राज्य के किसानों से ली गयी लगान।

औरंगज़ेब जिन समस्याओ से जूझ रहा था उनकी सूची बनाओ।

मुगल साम्राज्य का संकट और औरंगज़ेब की नीतियां

बादशाह बनने के 10 साल बाद औरंगज़ेब ने एक आदेश दिया कि उन सारे मंदिरों को, जिन्हें हाल ही में बनाया गया हो, तोड़ डाला जाये और केवल पुराने मंदिरो को रहने दिया जाये। उसने उन मंदिरो को भी नष्ट करने का आदेश दिया जहां पर मुसलमान हिंदू धर्म का अध्ययन करने आते थे ताकि वे ऐसा नही कर सकें। इस प्रकार औरंगज़ेब के शासनकाल मे अनेक प्रसिद्ध मंदिर तोड़ डाले गये।

बादशाह बनने के 21 साल बाद सन् 1679 में औरंगज़ेब ने हिंदुओं पर जज़िया कर फिर से लागू किया। किसानों, व्यापारियों और कारीगरों ने इसका कड़ा विरोध किया।

औरंगज़ेब की इन नीतियो से उसके बहुत से अमीर भी खुश नही थे। वे समय-समय पर औरंगज़ेब को समझाने की कोशिश करते थे कि यह नीति साम्राज्य के हित में नहीं है।

उसके दरबार के कई मुसलमान अमीर भी उसकी धार्मिक नीति का समर्थन नही करते थे। औरंगज़ेब के सबसे प्रमुख अमीरों में महाबत खान भी था। उसने बादशाह को चिट्ठी लिख कर अपना विरोध प्रकट किया। उसने लिखा था कि औरंगज़ेब की नीतियां न धर्म के लिए अच्छी हैं और न ही साम्राज्य के लिए।

पर औरंगज़ेब अपनी नीतियों पर अटल रहा। उसके

मरने के बाद ही जज़िया फिर से हटाया गया।

औरंगज़ेब की इन नीतियों का क्या कारण हो सकता है? कुछ इतिहासकार कहते हैं कि वह कट्टर था इसलिए उसने मंदिर तोड़े और जज़िया लगाया। पर अगर ऐसा था तो उसने बादशाह बनते ही ये कदम क्यों नहीं उठाये? अपने शासन के 10-20 साल बाद ही उसे क्या ज़रूरत महसूस हुई कि उसने हिंदुओं के खिलाफ कुछ कट्टर नीतियां अपनाईं?

मुग़ल दरबार में परंपरावादी मौलवी

इस प्रश्न पर विचार करने से हम समझ पाते हैं कि औरंगज़ेब धीरे-धीरे कई संकटों से घिरता जा रहा था। तुम इन संकटों के बारे में पाठ के शुरू में ही जान चुके हो; जगह-जगह विद्रोह, जागीरों की कमी, अमीरों में असंतोष, मराठों से परेशानी - औरंगज़ेब इन सब समस्याओं का हल नहीं निकाल पा रहा था।

इस संकट की स्थिति में औरंगज़ेब ने कोशिश की कि उसे राज्य के अधिक से अधिक लोगों का समर्थन व सहयोग मिले। उसने मराठों, राजपूतों, मुसलमानों - सभी का साथ पाने की कोशिश की। राज्य में कई लोग - मौलवी, अमीर व अन्य लोग, परंपरावादी मुसलमान थे। राज्य के संकट के समय में उनको अपने साथ करने के लिए औरंगज़ेब ने हिंदुओं के खिलाफ कुछ कदम उठाना तय किया। उसने जज़िया लगाया व मंदिर तुड़वाए।

पर हिंदू लोगों का समर्थन भी उसे चाहिए था। वह खासतौर से राजपूतों और मराठों को अपने साथ करना चाहता था। उसने बहुत बड़ी संख्या में मराठों को अपने शासन में पद दिये। उसने राजपूत अमीरों को भी खूब तरक्की दी। उन्हें साम्राज्य के महत्वपूर्ण पद दिए। राजा जय सिंह और महाराजा जसवंत सिंह उसके सबसे निकट सलाहकारों में से थे। औरंगज़ेब के शासनकाल में अमीरों में हिंदुओं की संख्या लगातार बढ़ती गयी। अकबर के समय में कुल 22 हिंदू अमीर थे और शाहजहां के समय में कुल 98 जबकि औरंगज़ेब के समय में कुल 182 हिंदू अमीर थे जो उसकी धार्मिक नीति के बावजूद उसके साथ रहे।

शायद ऐसे ही राजनैतिक कारणों की वजह से औरंगज़ेब ने कई मंदिरों व मठों को ज़मीन व पैसे दान में दिये। उज्जैन के महाकाल मंदिर और चित्रकूट के राम मंदिरों में ऐसे दान के फरमान आज भी देखे जा सकते हैं।

क्या तुम्हें अकबर और औरंगज़ेब के बीच कुछ समानता नज़र आ रही है? स्पष्ट करो।

जागीरों का संकट और मुग़ल साम्राज्य का टूटना

तुमने पहले पढ़ा था कि मुग़ल शासन से किसान परेशान थे और जगह-जगह विद्रोह करने लगे थे। ज़मींदार भी अपना स्वतंत्र राज्य बनाने की इच्छा से विद्रोह करने लगे थे। इन विद्रोहों के कारण जागीरदार किसानों से पर्याप्त लगान इकट्ठा नहीं कर पा रहे थे।

और उनकी आमदनी कम होने लगी थी।

आमदनी कम होते जाने की वजह से जागीरदार कम संख्या मे घुड़सवार रखने लगे। जागीरदारों के घुड़सवार कम हो गये तो वे ज़मींदारों के विद्रोह को दबा नही पाये।

ये तो उन जागीरदारों की बात है जिनके पास जागीरें थी। लेकिन बहुत सारे अमीरो को जागीर भी नही मिल रही थी। अमीर बहुत थे और जागीरें कम। तो सारे अमीरों के लिए पर्याप्त जागीरें नही बची। बहुत से अमीर इसी कोशिश मे लगे रहते थे कि उन्हें किसी तरह जागीर मिल जाये और वे भी ऐसी जगह मिले जहां कोई किसानो और ज़मींदारो के विद्रोह नहीं हैं। अच्छी जागीरें पाने के लिए अमीर आपस मे लड़ने झगड़ने लगे। एक बार अगर जागीर मिल जाये तो जागीरदार कोशिश करते थे कि उस जागीर के किसानो से ज़्यादा से ज़्यादा लगान वसूल किया जाये। उन्होंने बादशाह के लगान के बारे में नियमो व कानूनों का पालन करना छोड़ दिया।

हमने देखा कि सारे अमीरो का दो तीन वर्षो मे तबादला हो जाता था। साथ ही उनकी जागीरो का भी तबादला हो जाता था। मगर अब जिनका तबादला होता था उन्हें फिर से जागीर मिलने में बहुत समय लग जाता था। इस कारण अमीर यह कोशिश करने लगे कि उनका तबादला ही न हो और वे एक ही जगह रहें। अगर बादशाह उनका तबादला भी कर दे तो वे दूसरी जगह जाने से मना कर देते थे।

इस तरह धीरे-धीरे अमीर बादशाह के आदेशों की अवहेलना करने लगे। कई सूबेदार अपने-अपने सूबो मे स्वतंत्र रूप से [illegible] करने लगे। इस प्रकार बंगाल, अवध, हैदराबाद के सूबेदार स्वतंत्र हो गये।

कई ज़मीदार जिन्होने विद्रोह किया, उन्होंने स्वतंत्र राज्य बनाये। मराठों का अलग राज्य बना, राजा राम जाट के वंशजों ने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। पंजाब के सिखों ने भी स्वतंत्र राज्य बनाये। ये सब सिर्फ नाम के लिए अपने को मुग़ल बादशाह के अधीन मानते रहे पर वास्तव में स्वतंत्र रूप से शासन करने लगे। बस, दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र में मुग़ल बादशाह का हुकुम चलता रहा। इस तरह विशाल मुग़ल साम्राज्य, जिसपर एक बादशाह की हुकूमत चलती थी, टूट-टूट कर बिखर गया।

अभ्यास के प्रश्न

1. औरंगज़ेब के सामने दो बड़ी समस्याएं थी - किसानों-ज़मीदारो के विद्रोह और जागीर की कमी। इन समस्याओं को कुछ वाक्यो में समझाओ।
2. जागीर की कमी की समस्या दूर करने के लिए औरंगज़ेब ने कौन से उपाय किए? इन उपायों से वह सफल क्यों नहीं हुआ?
3. शिवाजी की सेना मुग़लो की सेना को किस तरह हरा पाती थी?
4. शिवाजी के राज्य को धन कई तरह से मिलता था -
   1. अपने राज्य के गांव से लगान
   2 ------------------------
   3 ------------------------
5. औरंगज़ेब ने हिंदुओ के खिलाफ कुछ कदम उठाए और पक्ष में भी - दोनो बातो के दो-दो उदाहरण लिखो।
6. सही गलत बताओ -
   अ. औरंगज़ेब ने हिंदू धर्म के विरोध में जो कदम उठाए, उनका सारे मुसलमानो ने समर्थन किया।
   ब. औरंगज़ेब ने हिंदू धर्म के विरोध मे कदम उठाए, इसके कारण हिंदू अधिकारियो ने औरंगज़ेब का साथ छोड़ दिया।
7. अ. औरंगज़ेब के शासन के आखिरी दिनो में जागीरदार बादशाह के आदेशो का उल्लंघन क्यों और किस तरह से करने लगे थे?
   ब. औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य कई अलग-अलग, स्वतंत्र राज्यो मे किस तरह बंट गया - समझाओ।

5 मुगल काल में विदेशी व्यापार की दुनिया
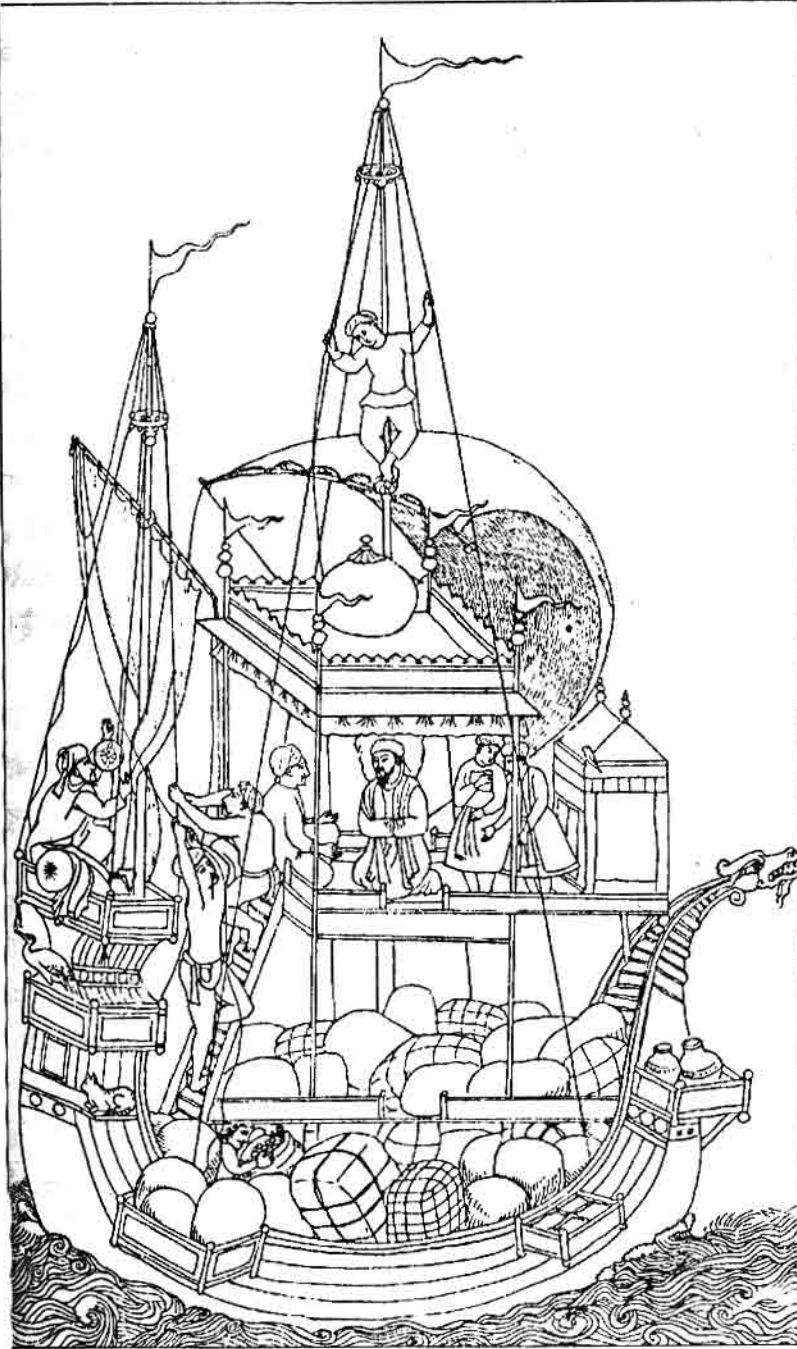
माल से लदकर आ रहे इस जहाज़ को देखो। जहाज़ के एक तरफ "मुअल्लिम" बैठा है और हाथ मे एक गोल उपकरण के साहरे वह तारो की स्थिति देखकर तय कर रहा है कि जहाज़ को अब किस दिशा मे जाना है। मज़दूर उसके कहे अनुसार पाल को घुमा रहे है। यह जहाज़ पाल का जहाज़ है जो हवा के बल पर चलता है। जहाज़ के ऊपर देखो, एक आदमी खड़े होकर चारो तरफ देख रहा है।

"क्या इस अनन्त सागर मे कही ज़मीन या द्वीप दिख रहा है? क्या कोई दूसरा जहाज़ नज़र आ रहा है?" जहाज़ के मालिक और व्यापारी दोनो बीच मे बैठकर बतिया रहे है।

इस जहाज़ मे मुख्यतः सूती कपड़े है। इन्हे भारत के पूर्वी तट पर स्थित बन्दरगाह मछिलिपटनम से खरीदा गया है। जहाज़ से इन्हे सूरत बन्दरगाह ले जाया जा रहा है। रास्ते मे कई छोटे बड़े बन्दरगाह जैसे मद्रास, कोचिन, कालीकट और गोवा पार कर चुके है। जहाज़ अब सूरत के निकट पहुंच रहा है।

सूरत मे सारा माल उतारा जायेगा। वहां देश विदेश के व्यापारी पहुंचे होगे। अरब से, ईरान से, इंग्लैंड से, फ्रांस से, हॉलैंड से और न जाने कहां-कहां से व्यापारी सूरत आ पहुंचते है। इन्हे इस जहाज़ से कपड़े दिखाये जायेंगे और बेचे जायेंगे।

सूरत मुग़ल साम्राज्य का सबसे बड़ा और प्रमुख बन्दरगाह है। चलो, इसकी सैर करके देखे।

सूरत बन्दरगाह की सैर

सूरत शहर उस जगह पर बसा है जहां ताप्ती नदी अरब सागर में गिरती है। इसे नक्शे में पहचानो।

समुद्र से ताप्ती नदी में प्रवेश करने के बाद जैसे-जैसे हम सूरत की तरफ बढ़े तो किनारे पर बीच-बीच में मछुआरों के गांव पड़े। फिर आया वह गांव जहां मुग़ल राज्य के अमीरों के जहाज़ों के ठहरने का स्थान बना है। यही सारी बरसात ये जहाज़ इन्तज़ार करते ठहरे रहते हैं कि मौसम साफ हो तो समुद्र पार की यात्रा शुरू करें। नदी पर और आगे सूरत के सबसे धनवान व्यापारी मुल्ला अब्दुल ग़फ़ूर के जहाज़ों का डेरा है। और उसके बाद आता है फ्रांसीसी जहाज़ों का डेरा, फिर तुर्की व्यापारियों के जहाज़ों का डेरा और फिर जाकर हॉलैंड के व्यापारियों के जहाज़ों का डेरा।

नदी के किनारे बने इन डेरों को पार करते हुए हम सूरत शहर पहुंच गए हैं जिसके किले की दीवार नदी के किनारे-किनारे बनी है।

चुंगी

किला पार करते हुए हम शाही चुंगी घर पर उतरे - जहां व्यापारी अपने माल पर चुंगी नाम का कर चुकाते हैं। जो भी माल यहां बिकने आता है उस पर 2.5% से 5% तक टैक्स (चुंगी कर) लगता है। मान लो कोई कपड़े का लट्ठा एक सौ रुपये का है। उस पर व्यापारी लगभग ढाई रुपये से पांच रुपये चुंगी कर सरकार को देता है।

मुग़ल बादशाह को यहां से अच्छी आमदनी हो जाती है। जितना अधिक व्यापार हो उतनी अधिक चुंगी इकट्ठी होगी सो मुग़ल बादशाहों की व्यापार बढ़ोत्तरी में रुचि ज़रूर है।

टकसाल

चुंगी घर के सामने सड़क पार कर के मुग़लों की शाही टकसाल है जहां सिक्के ढलते हैं। यहां विदेशी व्यापारी सोना-चांदी देते हैं और मुग़ल राज्य में चलने वाले सिक्के ढलवा लेते हैं। इन्हीं सिक्कों से तो वे मुग़ल राज्य के अन्दर माल खरीदेंगे। टकसाल के साथ ही लगा है दरिया महल, जो कि बन्दरगाह की देखरेख करने वाले उच्च अधिकारी का निवास स्थान है।

मैदान में बाजार

अब चलो, इन इमारतों के पीछे फैले लंबे चौड़े मैदान पर पहुंचे। यहां एक तरफ छांव में दूर-दूर

टकसाल में सिक्के बन रहे हैं
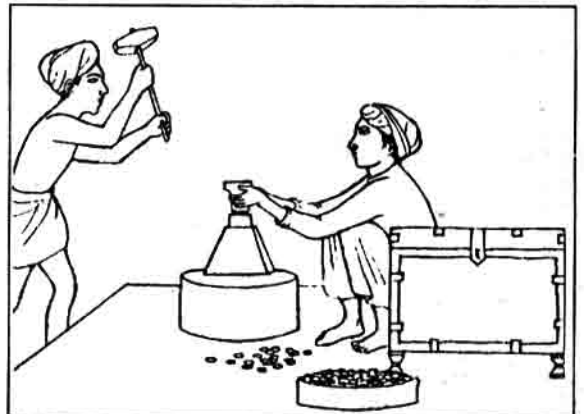
सूरत के मैदान में बाज़ार लगा है

से काफिलो में आये बैलगाड़ी, बैल, ऊंट और घोड़े खड़े हैं। व्यापारी गाड़ियों से कपड़ों के थान और नील व शक्कर के बोरों को मज़दूरों से उतरवाकर मैदान में अपने अपने तंबुओं में रखवा रहे हैं। दिन के चढ़ते-चढ़ते खरीद फरोख़्त भी तेज़ होती जा रही है। चारों तरफ दलालों की दौड़ लगी है। बाहर से माल खरीदने आये व्यापारी दलालों की मदद से ही माल खरीदते हैं। आखिर दलाल ही तो जानते हैं, माल कहां और कितने के भाव में मिल रहा है। हर चीज़ के अलग दलाल हैं - कोई कपड़ों की दलाली करता है, कोई शक्कर की, तो कोई नील की दलाली करता है। वे उस खास चीज़ के हर खरीददार और बेचने वाले को पहचानते हैं। इस बाज़ार में इन दलालों का बहुत बोलबाला है।

उधर देखो, शाही चुंगी घर के अधिकारी मैदान के दौरे पर निकले हैं। हर तंबू में माल की जांच करते हुये उस पर अपनी मुहर लगाते जाते हैं ताकि लोग पहचानें कि माल पर कर चुकाया गया है।

देर से पहुंचा काफिला

सूरत का एक गुजराती व्यापारी काफिले के पास खड़ा अपने आदमी को फटकार रहा है। आदमी बयाना से नील खरीद कर उसे बैलगाड़ियों के काफिले पर लदवा कर लाया है। सूरत पहुंचने में उसे 20 दिन की देरी हो गई थी और बेचारा बहुत थका हुआ, परेशान सा पहुंचा है कि मालिक की फटकार सुननी पड़ रही है।

आदमी समझाता है, "बैलगाड़ियां मिलने में देर हुई, मालिक। मैं आगरे में चौधरी उदयराम की गद्दी के सामने दस दिन तक चक्कर लगाता रहा। उनकी सारी बैलगाड़ियां बाहर गई हुई थी। फिर लखनऊ से 20 गाड़ियों का काफिला लौटा। तब उदयराम ने मुझे गाड़ियां किराए पर दीं।"

"बस बस। बहुत सुन ली तुम्हारी राम कहानी।" मालिक भुनभुनाया। उसके माल को आने में देरी हो गई थी सो दूसरों का माल पहले ही बिक चुका था

और वो भी ऊंचे दामों में। अब उसे दाम ऊंचे नही मिल पाएंगे वह जान गया था। "अरे, तुमने डाक से खबर क्यों नही भेजी? कासीदों की कोठी उदयराम के घर के बगल में ही है। ज़रूरी हरकारा (चिट्ठी) भेजते तो बीस दिन में आगरा से यहां आ जाता। पैसे ज़्यादा लगते तो क्या, मुझे मालूम रहता न कि माल आ रहा है। मै यहां सौदा तय करके रखता।"

(कासीदे उस समय के डाकिये थे जो दौड़कर जगह जगह चिट्ठी पहुंचाते थे।)

एक सराय

आगरा से सूरत का सफर

चलो, उधर डच व्यापारियों के तंबू की तरफ चलें। ये लोग आगरा से लंबा रास्ता तय करके सूरत आ पहुंचे हैं! ग्वालियर, सिरोंज, उज्जैन, बुरहानपुर से होते हुए सूरत पहुंचे हैं। तंबू के अन्दर यात्रा के किस्से सुनाए जा रहे हैं, कि कैसे दिन भर की धूल और हवा में सफर करते हुए रात को किसी शहर की सराय में शरण मिलती थी - और कभी-कभी सराय पूरी भरी मिली तो आम के बगीचे में ही रात काटनी पड़ी, कैसे अब रास्ते में पड़ने वाले नालों पर मुग़ल अधिकारियों ने अच्छे पक्के पुल बना दिए हैं तो सफर आसान हो गया है, कैसे रास्ते भर डाकुओं का भय बना रहा और इस डर से दो बार रास्ता बदल कर सफर में वे आगे बढ़े और इस कारण सूरत पहुंचने में कुछ दिनों की देरी हो गई।

इधर चुंगी, उधर कर

इतने में हमे कुहनी मारते हुए दो पारसी व्यापारी बातों में मशगूल, पर फुर्ती से चलते हुए निकले। एक अपनी उंगली पर गिनागिना कर कह रहा था, "हर शहर से निकलते समय चुंगी दो, सड़कों के लिए कर दो, सरायों और पुलों के लिए कर दो, गाड़ी में जुते ऊंट, बैल और अपने घोड़े रास्ते में घास चरते हैं तो चराई कर दो, पर जनाब अभी छुटकारा कहां मिला है - अभी नावों के लिए कर देंगे, बन्दरगाह के इस्तेमाल का कर देंगे, माल दे.ने का कर देंगे।
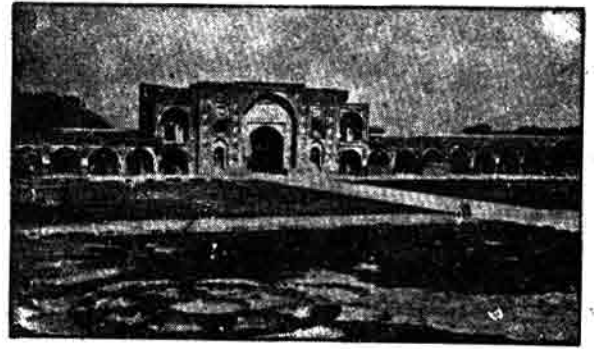
यह सब कर मुग़लों के राज्य को चुकाये और समुद्र पर पहुंच जायेंगे तो पुर्तगालियों का राज्य शुरू हो जायेगा। उनसे व्यापगर के 'पास' नही खरीदेंगे तो हमारे जहाज़ लूट लिये जायेंगे। इसीलिए चुपचाप पुर्तगालियों को रकम अदा करनी ही पड़ती है। इसको दो, उसको दो, बड़ा ताज्जुब है कि हम लोगों के पास भी कुछ बच जाता।" वे ठहाका लगा कर आगे बढ़ जाते हैं - तो ज़ाहिर है उनके पास काफी कुछ बचता होगा। हमारा ध्यान उनका पीछा करने से हटकर उस ओर जाता है जहां कुछ भगदड़ सी मची हुई है।

मजदूरों के लिए भगदड

अरे, अरे - मज़दूरों को लेकर दो व्यापारी भिड़ पड़े हैं। "इनसे मैने तय किया है।" "नही, इनसे मैंने तय किया है।" हां भई - बरसात खत्म हो गई है। नवंबर का महीना है - जहाज़ अब जल्दी भर-भरा कर समुद्र पर होना चाहिए सो मज़दूरों के लिए भगदड़ मची है।

अब्दुल गफूर की धाक

मज़दूरों की ही बात को लेकर सूरत शहर के काज़ी बहुत परेशान हैं। चलो, पता करें क्या बात है।

हमने पूछा तो पता चला कि मल्लाहों का सरदार फकीर मुहम्मद अपनी बिरादरी के 40 लोगों को ले कर सूरत के सबसे बड़े व्यापारी अब्दुल गफूर के पास काम मांगने गया था। अब्दुल गफूर का जहाज़ लाल सागर को सफ़र करने को तैयार हो रहा था। मल्लाहों की ज़रूरत उसे थी ही। उसने फकीर मुहम्मद और उसके आदमियों को नौकरी पर रख लिया। नौकरी की शर्तें थीं कि सरदार को महीने के 10 रु. मिलेंगे और 2 मन चावल, 8 सेर घी, 1 मन दाल मिलेगी। बाकी मल्लाहों को 5 रु. महीने, 1 मन चावल, आधा मन दाल व 4 सेर घी मिलेगा। और 2 साल तक वे सब अब्दुल गफूर के जहाज़ पर काम करेंगे।

पर इन शर्तों से हट कर एक शर्त और थी जिसे सुन कर काज़ी चौंके थे। अब्दुल गफूर ने मल्लाहों के सामने शर्त रखी थी कि समुद्र पर वे उसके जहाज़ की रक्षा करेंगे और अगर डाकुओं ने जहाज़ लूट लिया और वे न बचा पाए तो सूरत में उनका घर, सामान, परिवार सब अब्दुल गफूर के हवाले हो जाएगा। मल्लाह ये शर्त भी मान गए थे।

इस समझौते को शहर के काज़ी के पास दर्ज़ कराना था। (न्यायाधीश को उन दिनों काज़ी कहा जाता था।) जब काज़ी साहब ने आखरी शर्त पढ़ी तो वे चौंक गये। मल्लाहों से उन्होंने कहा, "अरे, यह क्या बेवकूफी कर रहे हो तुम लोग। तुम जहाज़ नहीं बचा पाये तो तुम्हारे बीबी बच्चे अब्दुल गफूर के गुलाम हो जायेंगे।" फकीर मुहम्मद बोला, "साहब हम ग़रीब और लाचार हैं। क्या कर सकते हैं!" काज़ी साहब बोले, "ग़रीबी है तो क्या बेवकूफी करोगे?" उन्होंने ऐसा अन्याय भरा समझौता दर्ज़ करने से मना कर दिया। पर अन्त में वही हुआ जो अब्दुल गफूर ने चाहा - अगले दिन मल्लाहों ने उन्हीं शर्तों पर अब्दुल गफूर का जहाज़ जाकर संभाल लिया।

तो इस तरह दुख, दर्द, गुस्से और ठहाके के सिलसिले के बीच व्यापार का काम चलता रहता है। आखिरकार सब तैयारियां हो जाती हैं और जहाज समुद्र को निकल पड़ते हैं।

मुग़लों के समय में परिवहन, डाक यात्रा, कर वसूली के अनुभव तुमने पढ़े।

ये आज के व्यापारियों के अनुभवों से कैसे मिलते-जुलते हैं - इस पर चर्चा करो।

काज़ी को समझौते की कौन सी बात अन्यायपूर्ण लगी और क्यों?

हवा की दिशा और समुद्री यात्रा

ये थे नज़ारे सूरत शहर के। यहां तुमने देश विदेश के व्यापारियों को आते देखा। यहां पर यूरोप, अरब, ईरान, चीन, इंडोनेशिया और भारत के दूसरे भागों से व्यापारी आते थे। ये लोग जहाज़ों से सागरों को पार करते हुये आते थे।

उन दिनों पाल के जहाज़ होते थे जो समुद्र पर हवाओं के सहारे चलते थे। समुद्र पर हवा निश्चित दिशाओं में बहती है - कभी हवा पूरब से पश्चिम की ओर चलती और कभी पश्चिम से पूरब की ओर। जब हवा पूरब से पश्चिम की ओर चलती तब जहाज़ केवल पश्चिम दिशा में चल सकते थे।

गर्मी के मौसम मे यानी अप्रैल से सितंबर तक हवा दक्षिण पश्चिम में हिंद महासागर से भारत की ओर चलती है। उन महीनों में यूरोप से जहाज़ अफ्रीका का चक्कर लगाते हुये भारत आते थे। उन्ही महीनों में अरब व्यापरियों के जहाज़ लाल सागर से भारत

के पश्चिमी तट पहुंचते थे। गर्मी के महीनों में जहाज़ भारत के पूर्वी तट से इंडोनेशिया की ओर चलते थे।

इंडोनेशिया में व्यापारी भारत में खरीदे सूती कपड़े बेचकर लौंग, दालचीनी, काली मिर्च, इलायची जैसे मसाले खरीदते थे। ठंड के मौसम में यानि अक्टूबर नवंबर में हवा का रुख बदलता। अब हवा उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर बहने लगती। इन हवाओं के सहारे पाल के जहाज़ भारत आ पहुंचते। ठंड के ही मौसम में यूरोप को रवाना होते थे और अरब जहाज़ लाल सागर की ओर चल पड़ते।

यूरोप से व्यापार

पुर्तगाल देश का नाविक वास्को ड गामा सबसे पहले सन् 1492 में यूरोप से अफ्रीका का चक्कर लगाते हुये भारत पहुंचा। इसके बाद एक-एक करके हॉलैंड, फ्रांस और इंग्लैंड के व्यापारी भारत आने लगे। वे यूरोप और अफ्रीका से सोना-चांदी लाते और भारत में उसके बदले में रेशमी और सूती कपड़े खरीदकर इंडोनेशिया ले जाते। वहां इन कपड़ो के बदले में मसाले खरीदकर यूरोप ले जाते। यूरोप में इन मसालों की खूब मांग थी। व्यापारियों को इसमें 20-30 गुना मुनाफा होता था। धीरे-धीरे यूरोप में भारत के कपड़ों की मांग बढ़ने लगी। सो भारत से कपड़ों की खरीदी भी बढ़ने लगी।

हिन्द महासागर पर पुर्तगालियों का राज्य बना

हिन्द महासागर, जिस पर से व्यापार होता था, पर कई लोगो की निगाहें थी।

> *मानचित्र में देखो कि हिन्द महासागर के पास के महाद्वीपों में किन चीज़ों का व्यापार होता था। सागर में जहाज़ों के चलने के रास्ते किन बन्दरगाहों से होते हुए निकलते थे।*

इन्ही रास्तों पर वे जहाज़ चलते थे जिनसे माला-माल हुआ जा सकता था। इन बन्दरगाहों और रास्तों पर अगर किसी का कब्ज़ा हो जाये तो पूरा व्यापार उनके हाथ में आ सकता था।

यूरोप के कई देश - फ्रांस, इंग्लैंड, हॉलैंड, पुर्तगाल आदि - हिन्द महासागर के व्यापार पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश में रहे। पर सन् 1492 से सन् 1600 के बीच पुर्तगाल देश के व्यापारियों ने यह कर दिखाया।

नक्शे में देखो, पुर्तगालियों ने हिन्द महासागर को घेरने वाले पूरे समुद्र तट पर जगह-जगह कब्ज़ा कर के अपने किले बना लिए थे। ये किले जहाज़ चलने के सारे रास्तों पर निगरानी रख पाते थे।

इस तरह पुर्तगालियों ने हिन्द महासागर पर अपना राज्य बनाया। पानी पर राज्य? हां। हुकुम था कि इस सागर पर सिर्फ पुर्तगाली जहाज़ व्यापार करेंगे। उनकी इज़ाज़त बग़ैर दूसरा कोई व्यापारी अपना जहाज़ इस सागर से नही ले जाएगा। पुर्तगालियों की इज़ाज़त मोटी रकम दे कर पास के रूप में खरीदनी पड़ती थी।

क्या किसी की हिम्मत थी टक्कर लेने की? तो सेना सिर्फ ज़मीन पर पैदल या हाथी घोड़े पर चलने वाली नही होती। सेना समुद्र पर भी होती है - जहाज़ो पर तैनात रहती है। जिन पर बन्दूकें और तोपें जमी होती हैं।

पुर्तगालियों से टक्कर लेने वाले अरब, गुजराती व अन्य व्यापारियों के जहाज़ कितनी ही बार उनकी नौ सेना (नाव पर सैना) द्वारा लूटे गए और गोलाबारी से डूबे। जिन बन्दरगाहो पर दूसरे व्यापारियो का माल उतरता-चढ़ता था उन बन्दरगाहों को पुर्तगालियो की नौ सेना ने तबाह किया। उनके मुकाबले की नौ सेना किसी की न थी। हिन्दुस्तान के तो किसी भी राजा ने नौ सेना तैयार करने की तरफ ज़्यादा ध्यान नहीं

हिंद महासागर में व्यापार
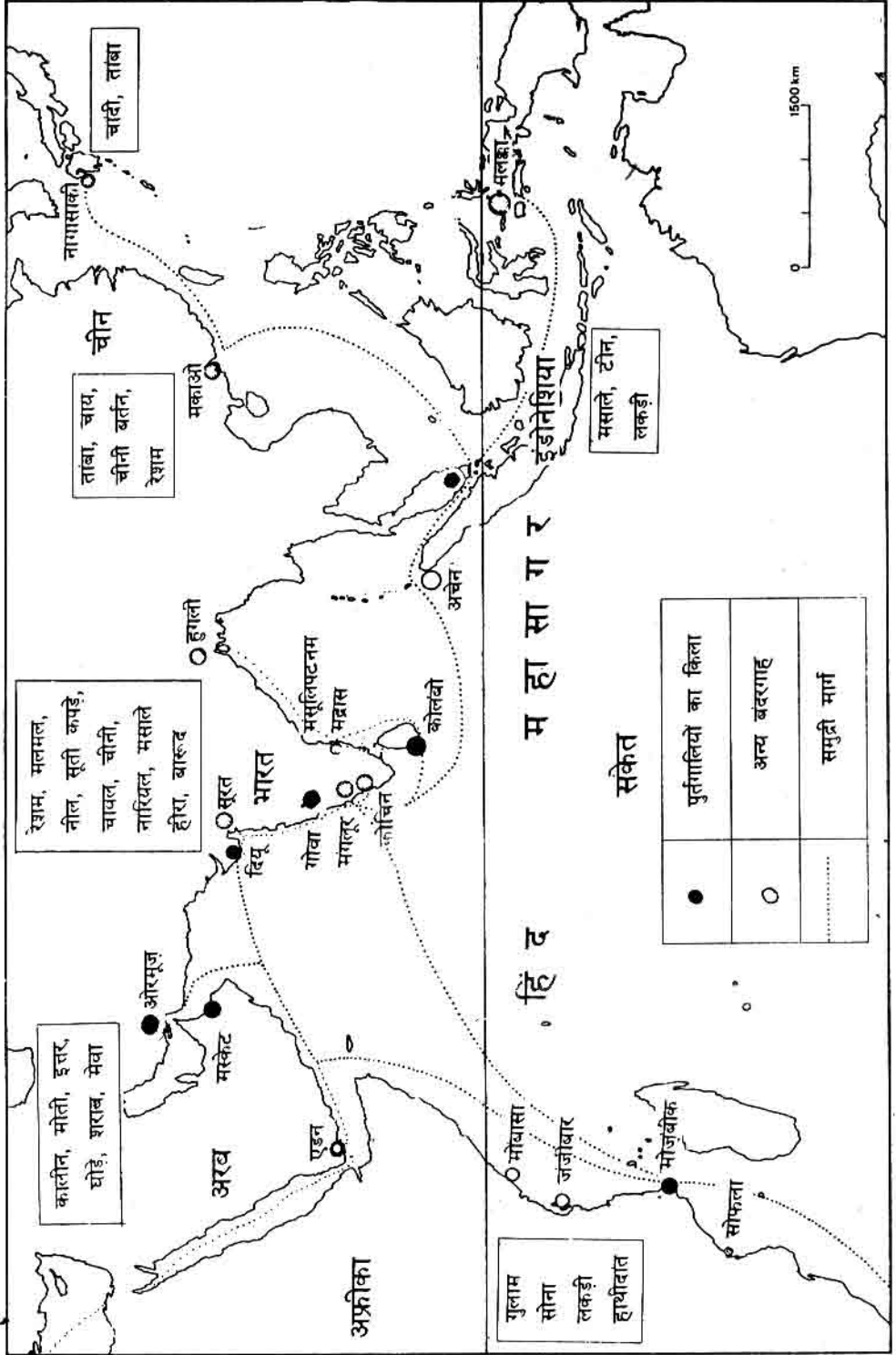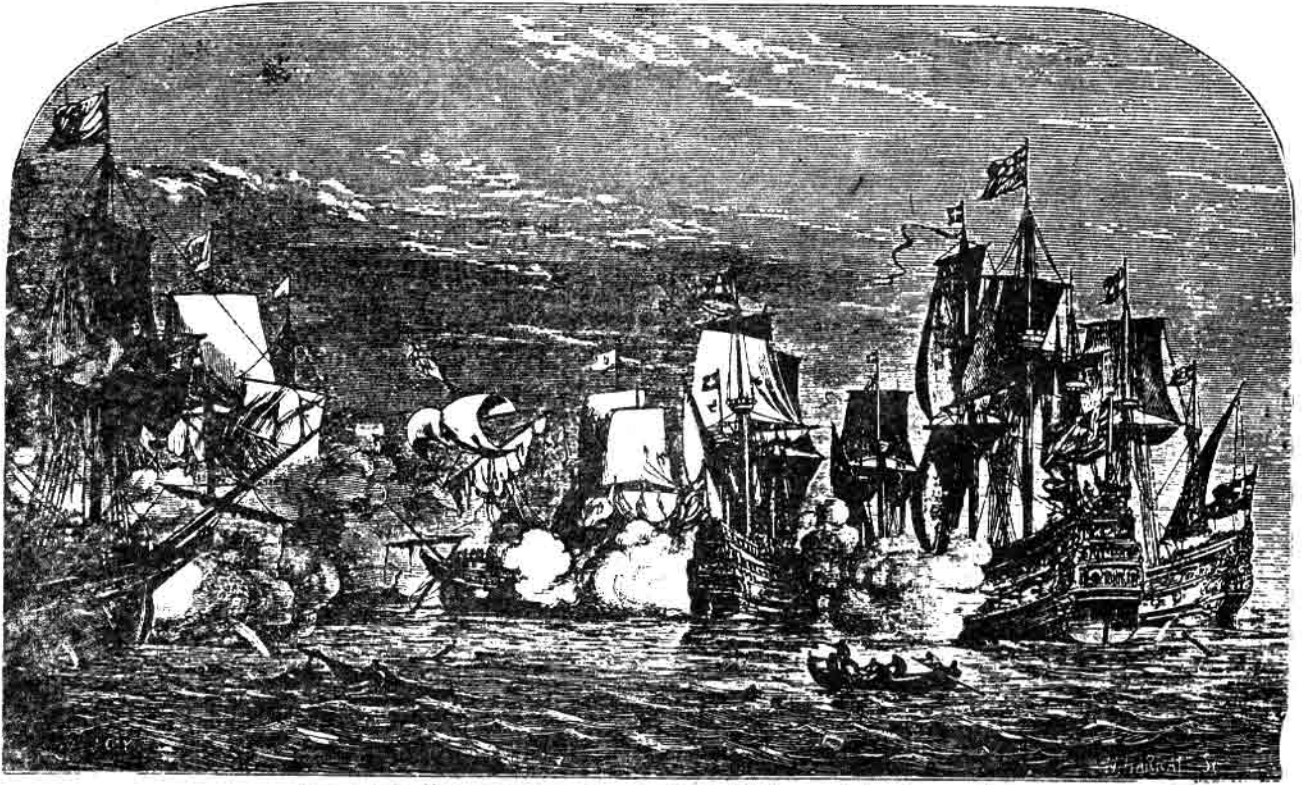
सन 1612 मे सूरत के पास मे पुर्तगाली व अंग्रेज़ी जहाज़ो के बीच लड़ाई

दिया था। मुग़ल बादशाहो ने भी नही। इसलिए पुर्तगालियों से परेशान होकर भी कोई उन्हें खदेड़ न सका।

इंडोनेशिया पर डच लोगों का राज्य

कुछ वर्षो बाद हॉलैंड देश के लोग - जो डच कहलाते थे - ने पुर्तगालियो को भी मात कर दिया। उन्होंने पुर्तगालियों को हरा कर इंडोनेशिया पर अपना राज्य बना डाला और इस तरह वहां उगने वाले मसालो पर उनका एकछत्र अधिकार बन गया।

भारत में यूरोप के व्यापारियों की होड़

भारत में दूसरे यूरोपीय देश के व्यापारी पुर्तगाली लोगों के हाथ से व्यापार छीनने की कोशिश करते रहे। समय के साथ पुर्तगाली नौ सेना और किलो की ताकत अंग्रेज़, डच और फ्रांसीसी लोगो के मुकाबले के कारण कमज़ोर पड़ गई। उसके बाद भारत में यूरोप के यह सभी लोग व्यापार हथियाने की होड़ में लगे रहे। कुछ समय तक किसी एक का भारत के व्यापार पर अधिकार नही जम सका।

यूरोप के सभी देशों के व्यापारी हमेशा इसी कोशिश मे लगे रहते थे कि वे भारत में कम से कम कीमत दे कर सामान खरीद सकें। फिर वे इस सामान को यूरोप में अधिक से अधिक दाम पर बेच कर खूब मुनाफा कमा सकें। उन्होंने पाया कि सूरत, मसूलीपटनम जैसे बड़े बन्दरगाहो पर जो सामान व्यापारियो द्वारा बिकने लाया जाता है वह महंगा मिलता है। इसलिए यूरोप के व्यापारी अन्दर गांव-गांव मे अपना आदमी या एजेन्ट

भेज कर सीधे कारीगरों से माल खरीदने की कोशिश में रहते ताकि सस्ता माल मिले।

पर गांव-गांव से माल लाने में उनके आदमी को कई तरह के कर चुकाने पड़ते थे। यूरोप के व्यापारियों को ये कर बहुत अखरते। इन्हें चुकाने में बहुत पैसे खर्च हो जाते थे और माल की कीमत बढ़ जाती थी। यह बात गुरुजी से समझो।

इन व्यापारियों ने व्यापार का अधिक से अधिक लाभ उठाने का एक तरीका अपनाया। वे बादशाहों व राजाओं के पास अपने-अपने दूत भेजते और भारत में खुल कर व्यापार करने की इज़ाज़त मांगते। व्यापारियों के दूत कुछ करों को न देने की छूट मांगने लगे। इसके बदले में वे बादशाहों व राजाओं को बहुमूल्य भेंट पेश किया करते थे। बहुत बार उन्हें करों की छूट मिल जाया करती थी। राजाओं के मन में यह आशा रहती थी कि करों में छूट देने से उनके राज्य में ज़्यादा व्यापार आकर्षित होगा, और राज्य खूब फलेगा-फूलेगा। इससे और अधिक कर मिलेगा।

करों में बढ़ोतरी की उम्मीद के अलावा हिन्दुस्तान के राजाओं के मन में यूरोपीय व्यापारियों की तरफ से एक धमकी का असर भी था। पुर्तगाली नौ सेना का मुकाबला दूसरे यूरोपीय देशों की सशक्त नौ सेनाएं ही कर सकती थी और हिन्दुस्तान के जहाज़ों को पुर्तगालियों के खतरे से सुरक्षा की ज़रूरत थी। अंग्रेज़, फ्रांसीसी व डच कहते, "व्यापार की छूट दोगे तभी हम हिन्दुस्तानी जहाज़ों की सुरक्षा की गारण्टी देंगे। नही तो मौका मिलने पर उन्हें लूटा व डुबोया जाएगा।"

यूरोपीय देशों द्वारा व्यापार के लाभ पर कब्ज़ा करने से संबंधित पांच महत्वपूर्ण वाक्य रेखांकित करो।

इस स्थिति का फायदा उठाकर यूरोप के व्यापारियों ने हिन्दुस्तान में व्यापार का खूब लाभ लूटा। उन्हें कई कर न देने की छूट मिली, ज़मीन खरीद कर उन्होंने अपने गोदाम, घर, बन्दरगाह बनाए और अपने-अपने किले भी बनाए। इन व्यापारियों ने आगे जाकर किस तरह भारत में अपना राज्य बना लिया, यह तुम अगले पाठ में पढ़ोगे।

o o o

अभ्यास के प्रश्न

1. यूरोप के व्यापारी इंडोनेशिया जाकर मसाले खरीदने से पहले अफ्रीका और भारत के बन्दरगाहों पर क्यो रुकते थे?
2. मुग़लों के समय मे व्यापारी अगर माल एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाना चाहे तो उसकी क्या व्यवस्था थी?
3. मुग़ल काल मे डाक से खबर पहुंचाने की क्या व्यवस्था थी?
4. जहाज़ चलाने का काम कौन लोग करते थे? उन्हें इस काम के बदले मे क्या मिलता था?
5. पुर्तगालियों ने हिन्द महासागर पर अपना राज्य किस तरह बनाया? इसका उन्होंने क्या फायदा उठाया?
6. पुर्तगालियों को भारत के राजा हरा कर भगा क्यों नहीं पाए?
7. भारत के राजाओ ने यूरोपीय देश के व्यापारियों को किस तरह की सहायता दी? उन्होंने यूरोपीय व्यापारियों को सहायता क्यों दी?

6 भारत में अंग्रेज़ों का राज्य बना

तुमने यह अक्सर सुना होगा कि अंग्रेज़ भारत में व्यापार करने आए थे और राज्य करने लगे।

आओ समझें कि यह कैसे हुआ।

> *तुम पिछले पाठों के अनुसार बताओ कि -*
> *भारत में किन यूरोपीय देशों के व्यापारी आते थे?*
> *वे व्यापार का मुनाफा बढ़ाने के लिए क्या कोशिशें करते थे?*
> *मुग़ल साम्राज्य के कमज़ोर पड़ने के बाद भारत में कौन-कौन से राज्य बने?*

सशस्त्र व्यापारी

भारत में व्यापार करने के लिए यूरोप के व्यापारियों ने अपनी अपनी कंपनियां बनाईं थी। अंग्रेज़ व्यापारियों की 'इंगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी' थी और फ्रांस के व्यापारियों की 'फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी' थी। इंगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी और फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी भारत के व्यापार पर कब्ज़ा करने के लिए एक दूसरे से लंबे समय तक लड़ती रही। एक कंपनी इस कोशिश में रहती कि दूसरे को भारत से खदेड़ कर निकाल दे। इसके लिए दोनों ही कंपनियां अपने देश - इंग्लैंड व फ्रांस - से सैनिक बुलवाने लगी। इंग्लैंड और फ्रांस देश के राजा अपनी अपनी कंपनियों का पूरा समर्थन करते थे और उन्हें मदद देते थे।

भारत में ज़मीन लेकर इन कंपनियों ने अपने अपने किले भी बनाए और भारत में एक दूसरे से कई युद्ध लड़े।

अस्त्र-शस्त्र, सैनिक बल और किलेबंदी के सहारे होने वाला यह व्यापार कोई साधारण व्यापार नहीं रहा। भारत के राजाओं और नवाबों को यह बात बड़ी खतरनाक लगी कि उनके राज्य में किसी दूसरे

अंग्रेज़ सेना का एक अफसर भारत पधारते हुए

देश के लोग सेनाएं रखें, युद्ध लड़ें, किले बनाएं और अपनी सैनिक शक्ति की धाक जमाएं।

क्या तुम समझा सकते हो कि उन्हें इसमें क्या ख़तरा नज़र आया?

राजा व नवाब व्यापार के खिलाफ नहीं थे। पर वे अपने राज्य में किसी और की सैनिक ताकत नही बनने दे सकते थे। उन्होंने कंपनियों की सैनिक ताक़त पर रोक लगाने की कोशिश की।

उदाहरण के लिए, 1764 में कर्नाटक के नवाब अन्वरुद्दीन खान ने फ्रेंच कंपनी के खिलाफ अपनी सेना भेजी। पर, कर्नाटक के नवाब की बड़ी सेना को फ्रेंच कंपनी की छोटी सी सेना ने पूरी तरह हरा दिया।

इस हार ने सब को आश्चर्य में डाल दिया। यह सबके सामने साबित हो गया कि छोटी सी यूरोपीय सेना अपने से बड़ी भारतीय सेना से कहीं ज़्यादा बेहतर होती है। इससे यूरोपीय व्यापारियों का दुःसाहस बढ़ने लगा। वे सोचने लगे कि हम अपनी सेना के बल पर भारत में मनचाहा करवा सकते हैं।

पर, यूरोपीय सेना इतनी शक्तिशाली क्यों साबित हुई?

यूरोपीय सेना की ख़ासियत

यूरोपीय सेना के पास भारतीय सेनाओं से बेहतर तोपें और बंदूकें थी। पर, ज़्यादा महत्व की बात यह है कि यूरोपीय सैनिकों को नियमित रूप से अभ्यास कराया जाता था और बहुत अनुशासन में रखा जाता था।

यूरोपीय सेना में रोज़ परेड और ड्रिल होती थी। इस तरह के अभ्यास से कंपनी की सेना में भर्ती किए गए भारतीय सिपाही भी लड़ाई में बहुत कुशल हो जाते थे जबकि भारतीय सेनाओं में रोज़ परेड और ड्रिल का नियम नहीं था। दोनों सेनाओं में एक महत्वपूर्ण फर्क यह भी था कि भारतीय सैनिकों की तुलना में यूरोपीय सैनिकों को ज़्यादा नियमित रूप से वेतन मिल जाता था।

इन विशेषताओं के कारण यूरोपीय सेना का पलड़ा भारतीय सेनाओं से भारी रहने लगा।

यहां यूरोपीय फौज की दो विशेषताएं बताई हैं। कक्षा में चर्चा करो कि इनके कारण यूरोपीय फौज युद्ध में ज़्यादा सफल क्यों रह पाती होगी?

अंग्रेज़ सेना के भारतीय सिपाही अभ्यास करते हुए

भारत के राज्य और अंग्रेज़ कंपनी की सेना

एक तरफ फ्रेंच कंपनी से होड़ में अंग्रेज़ कंपनी जीतने लगी थी। दूसरी तरफ भारत के राज्यों में भी उसका और उसकी सेना का बड़ा दबदबा था। इस सबका फायदा व्यापार में मुनाफा बढ़ाने के लिए किया जाने लगा। वह कैसे, आओ देखें।

भारत के राजा और नवाब अपना अपना राज्य बढ़ाने में और एक दूसरे पर हमला करने में लगे रहते थे। कंपनी इन झगड़ों में अपनी टांग अड़ाने लगी। अगर कंपनी किसी राजा या नवाब का साथ देने को तैयार हो जाती और अपनी सेना उसके लिए लड़ने भेज देती तो उस राजा या नवाब की ताकत बहुत बढ़ जाती थी।

राजाओं की सैनिक ताकत बढ़ाने के बदले

मे कंपनी उनसे व्यापार की कई रियायते ऐंठने लगी।

राजा कंपनी की सैनिक सहायता के बदले में उसे बहुत धन भेंट मे देते। यह धन कंपनी के व्यापार के काम आता।

कई बार कंपनी राजा से उसके राज्य का एक इलाका भेंट में ले लेती। उस इलाके के गांव शहरों से कंपनी लगान वसूल करती और लगान से मिले धन से व्यापार करती। इस तरह मिले धन से कंपनी अपनी सेना का खर्चा भी चलाने लगी।

कंपनी को भेंट देने और उसकी सेना का खर्चा उठाने में भारतीय राजाओं पर बहुत बोझ पड़ने लगा। वे कंपनी की दूसरी बातों से भी परेशान रहते थे।

कंपनी द्वारा राज्य के काम में दखल

कंपनी राज्यों मे जो माल खरीदती थी उस पर उसे कई कर न देने की छूट मिली हुई थी। पर, कंपनी को मिली इस छूट का फायदा और बहुत लोग उठा रहे थे। कंपनी के कर्मचारी अपना निजी व्यापार भी कर रहे थे। वे अपने माल को कंपनी का माल बता देते थे और कर नही चुकाते थे। इस तरह कंपनी तो धनवान हो ही रही थी, उसके कर्मचारी व अफ़सर भी निजी रूप से मालामाल होके भारत से लौटते थे। कई भारतीय व्यापारी व सेठ थे जो कंपनी के व्यापार में मदद करते थे। वे भी अपने माल को कंपनी का माल बता कर कर देने से बच जाते थे।

कंपनी की आड़ में राज्यों में लूट-खसोट, धोखा-धड़ी मची हुई थी। कंपनी को अपनी सैनिक ताकत का घमंड था इसलिए वह उद्दंडता से काम कर रही थी। कंपनी कारीगरों से ज़ोर ज़बरदस्ती से बहुत कम कीमत पर माल खरीदने की कोशिश करती रहती। जो इलाके कंपनी को भेंट में मिले थे उनके किसानों से भी हद से ज़्यादा लगान वसूल करने की कोशिश करती रहती। जब राजा इन बातों का विरोध करते तो अंग्रेज़ उनसे लड़ पड़ते। उस राजा को हटा कर वे ऐसे किसी व्यक्ति को राजा बनाते जो उनके व्यापार के तरीकों पर रोक न लगाए।

इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी भारत के राजाओं के राज्य में क्या-क्या फायदे उठाने की कोशिश करती थी?

अंग्रेजों का राज्य बना

समय के साथ अंग्रेजों को लगने लगा कि वे व्यापार के फायदे के लिए भारत का खुल कर इस्तेमाल तभी कर पाऐंगे जब वे खुद उस पर राज्य करें।

भारत अंग्रेज़ो के व्यापार के लिए इतना महत्वपूर्ण क्यो था कि वे उस पर राज्य बनाने की सोचने लगे?

सबसे पहले अंग्रेज़ भारत मे बुना कपड़ा यूरोप में बेच कर मालामाल होते थे। फिर जब इंग्लैंड में कपड़े के कारखाने लग गए तो वे वहां का बना कपड़ा और दूसरा सामान भी भारत में बेचने लगे। भारत से वे कपास खरीद कर अपने देश के कारखानों को बेचते। वे भारत में कई ज़रूरी फसलें उगवा कर उन्हें दूर दूर बेचते - जैसे - नील, पटसन, अफीम, गन्ना, चाय, कॉफी। उन्होंने व्यापार की ये सब चीज़े लाने ले जाने के लिए भारत के महत्वपूर्ण क्षेत्रो में रेल लाईने और सड़कें बिछाने की कोशिश भी शुरू की। इसके लिए वे लोहा, कोयला आदि खनिजो की खदानें खोलना चाहते थे व जंगल से लकड़ी का व्यापार करना चाहते थे।

यह सब करने के लिए उन्हें भारत में जगह जगह अपने अधिकारी रखने और भारत के लोगों पर अपना नियंत्रण बनाने की ज़रूरत महसूस हुई।

इस तरह एक ऐसा वक्त आया जब अंग्रेज़ भारत के राजाओं व नवाबों को हटा कर खुद शासन चलाने लगे।

सन् 1757 में अंग्रेज़ों ने पलासी नाम की जगह पर बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को हरा कर बंगाल
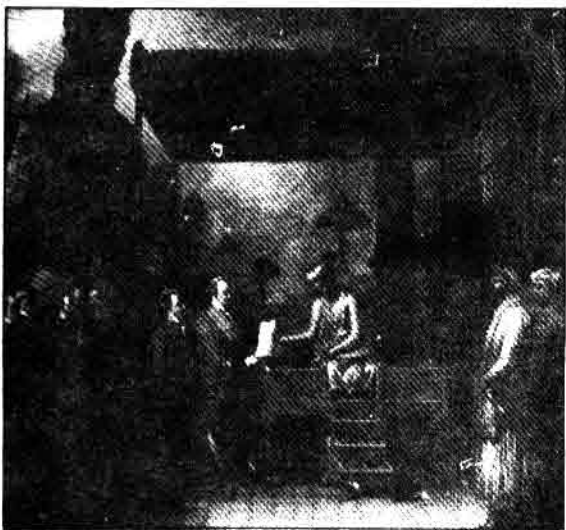
राबर्ट क्लाइव मुग़ल बादशाह से बंगाल की लगान लेने का अधिकार पा रहा है

पर अधिकार जमाया। पलासी का युद्ध भारत के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है। फिर धीरे-धीरे अंग्रेज़ भारत के सब छोटे बड़े राज्यों पर कब्ज़ा करने लगे।

कई राजाओं और नवाबों ने अंग्रेज़ों की चालों को समझा और बहुत तैयारियां कर के अंग्रज़ों का कड़ा मुकाबला किया। ऐसे राजा थे मैसूर के हैदर अली और टीपू सुल्तान, मराठा सरदार महादजी सिंधिया, नाना फडनविस आदि। मगर इनके राज्य छोटे थे और वे एक-एक कर के अंग्रेज़ों से हार गए।

टीपू सुल्तान

अंग्रेज़ी सफलता के पीछे रॉबर्ट क्लाईव, वॉरेन हेस्टिंग्स, लॉर्ड वेलेसली जैसे सेनापतियों का महत्वपूर्ण योगदान था।
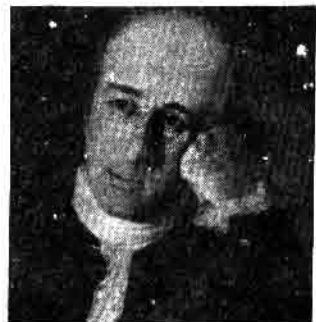
वॉरेन हेस्टिंग्स

धीरे-धीरे भारत के अनेकों इलाकों पर अंग्रेज़ों का सीधा शासन स्थापित हो गया। कई जगहों पर पुराने राजाओं व नवाबों का शासन बना रहा पर ये राजा व नवाब अंग्रज़ों के अधीन हो गए। उनके दरबार में एक अंग्रेज़ अधिकारी (जिसे रेसीडेन्ट कहते थे) रहने लगा ताकि राज्य के काम काज पर अंग्रेज़ सरकार की निगरानी बनी रहे।

उदयपुर के राजा के दरबार में अंग्रेज़ रेसीडेन्ट

नक्शे में देखो सन् 1857 तक आते आते अंग्रेज़ों की हुकूमत कहां तक फैली थी?
उन राज्यों की सूची बनाओ जहां भारतीय राजा बने रहे।
व्यापार करते करते इंगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में राज्य बनाने की क्यों सोचने लगी?
अंग्रेज़ों के व्यापार के लिए भारत की क्या चीज़ें महत्वपूर्ण थीं?

अंग्रेज़ी राज्य से असंतोष

अंग्रेज़ों को अपना शासन जमाने के लिए बहुत लड़ना पड़ा। मगर उन्हें फिर भी चैन न मिला। उन्हें लगातार भारतीय लोगों के विद्रोह का सामना करना पड़ा।

पुराने राज-परिवार के लोग विद्रोह करते थे क्योंकि अंग्रेज़ अपनी मर्ज़ी से किसी को भी राजा बनाते या हटाते थे।

किसान व ज़मीन के मालिक विद्रोह करते थे क्योंकि उनसे बहुत अधिक और बहुत सख़्ती से लगान वसूल किया जाता था और उन्हें अपनी ज़मीन नीलामी के ज़रिये खोने का डर हमेशा बना रहता था।

आदिवासी भी लड़ाई के मैदान में उतरे क्योंकि अंग्रेज़ों के नये कायदे-कानून लागू हो रहे थे। इनसे आदिवासी लोग जंगल और ज़मीन पर अपने अधिकार खोने लगे थे। तुम इन बातों के बारे में अगले पाठों में गहराई से पढ़ोगे।

उन दिनों हिंदुओं व मुसलमानों के मन में यह भी डर बैठने लगा था कि अंग्रेज़ उनके धर्म को नष्ट करके सब को ईसाई बना देंगे।

अंग्रेज़ों का सबसे कड़ा मुकाबला सन् 1857 में हुआ जब कुछ महीनों के लिए लगभग पूरे उत्तर-भारत पर अंग्रेज़ों की हुकूमत उखाड़ फेंकी गई। यह विद्रोह अंग्रेज़ों के भारतीय सिपाहियों ने शुरू किया - मगर देखते देखते पुराने राज-परिवार, ज़मीदार, किसान आदिवासी व कारीगर सब इस विद्रोह में शामिल होते गए।

1857 के विद्रोह की शुरुआत

जगह - मेरठ की सैनिक छावनी, जहां अंग्रेज़ी फौज ठहरी थी।

दिन - इतवार, 10 मई, सन् 1857

सूरज ढलने [illegible] था जब फौज के भारतीय सिपाहियों ने अपने अंग्रेज़ अफसरों पर बंदूक चलानी शुरू कर दी। हां वही सैनिक जिन्होंने अंग्रेज़ों की तरफ से लड़कर पूरे भारत के राजाओं पर विजय पाई थी। अब वे अंग्रेज़ों के व्यवहार से तंग आ गए थे। उन्हें न तंख्वाह ठीक से मिलती थी, न फौज में उनसे इज़्ज़त से बर्ताव किया जाता था। ऊपर से सिपाहियों को शक था कि बंदूकों के नए कारतूसों में गाय और सुअर की चरबी मिली है। सिपाही डरने लगे कि उनका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। सो उन्होंने 10 मई सन् 1857 को अपने अंग्रेज़ अफसरों पर गोली चला दी।

विद्रोही सिपाही रातों-रात देहली की तरफ कूच कर गए। सुबह होते ही वे यमुना नदी पार करके देहली पहुंच गए। इस बीच मेरठ शहर में खबर फैली कि सिपाहियों ने अंग्रेज़ों के खिलाफ विद्रोह कर दिया है। तब शहर में गदर मच गया। बाज़ार से भीड़ का रेला आया और अंग्रेज़ों के बंगलों पर हमला बोलने लगा। भीड़ में पुलिस के लोग भी शामिल हो गए थे और देखते-देखते आसपास के अंग्रेज़ों के बंगले व दफ्तर जलाए गए, और कई अंग्रेज़ लोगों की हत्याएं हुईं।

उधर, मेरठ के विद्रोही सिपाही दिल्ली पहुंच गए थे। वहां मुग़ल वंश का बादशाह बहादुर शाह ज़फर लाल किले में अंग्रेज़ों द्वारा नज़रबंद था। सिपाहियों ने उसे अपना बादशाह एलान किया और उसे अंग्रेज़ों

1857 में भारत के राज्य
कश्मीर
ग्वालियर
राजपुताना
अंग्रेज साम्राज्य
रीवा
इंदौर
बड़ोदा
हैदराबाद
मैसूर
संकेत
भारतीय राज्य
अंग्रेज साम्राज्य
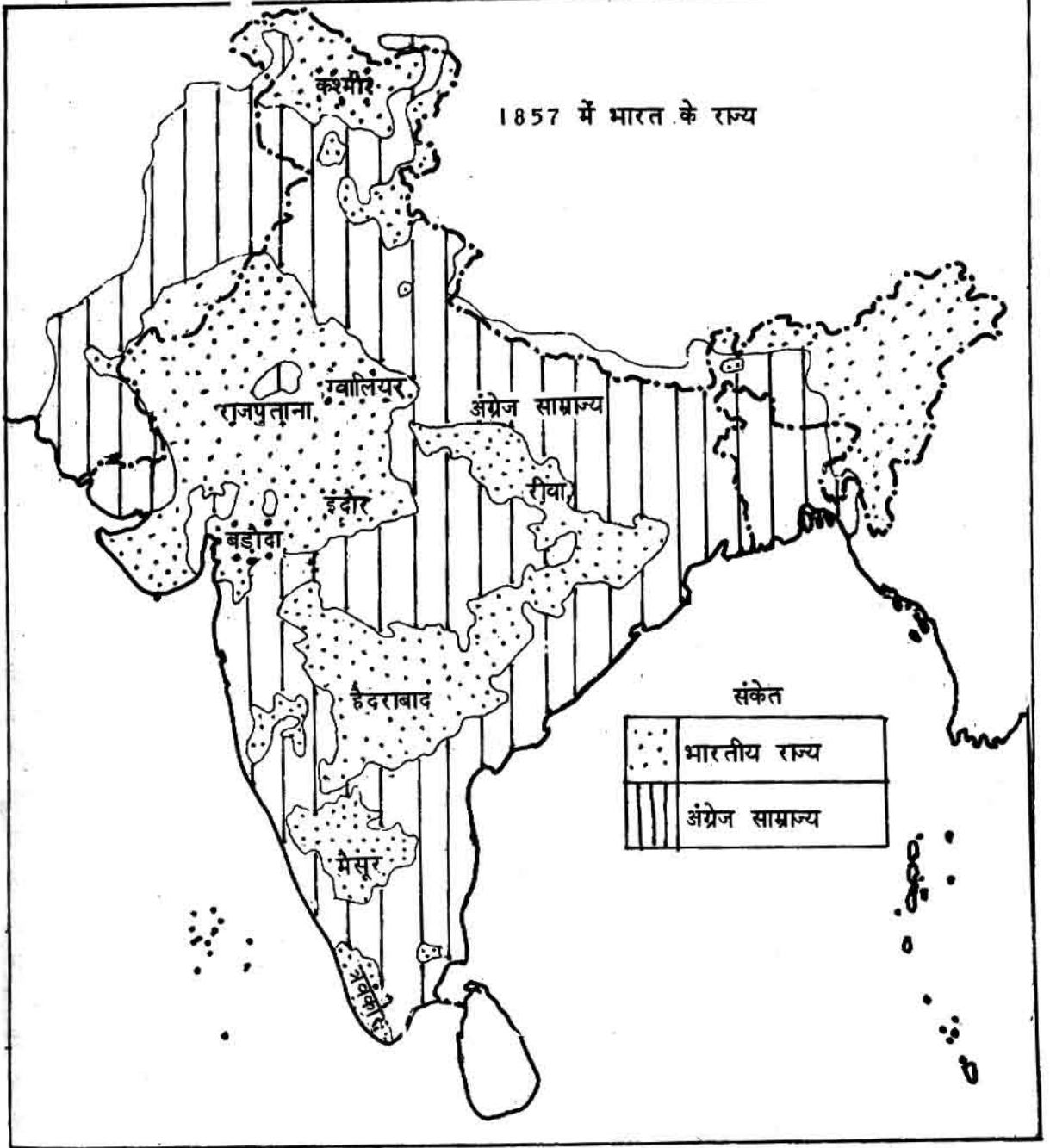
की हुकूमत ठुकराने को राज़ी कर लिया। "अंग्रेज़ो को भगा कर पुराना मुग़ल राज्य फिर से स्थापित करना है" - यह विद्रोहियो की पुकार थी।

इस पुकार का फैलना हुआ नही कि जगह-जगह पर अंग्रेज़ो के खिलाफ विद्रोह भड़क उठा - अलीगढ़, मैनपुरी, बुलंदशहर, एटक, मथुरा की छावनियो मे सिपाहियो ने गदर मचा दिया। अंग्रेज़ बुरी तरह घबरा गए। उनकी स्थिति वाकई बहुत नाजुक थी। भारत में 45,000 अंग्रेज़ी फौजी व अफसर थे। पर फौज़ मे भारतीय सिपाहियो की संख्या इनसे कही अधिक थी - दो लाख बत्तीस हज़ार। ये ही सिपाही विद्रोह पर उतर आए थे। तो हर शहर मे अंग्रेज़ निवासियो की जानमाल की रक्षा कौन करेगा? भारतीय फौजो पर तो भरोसा नही किया जा सकता था। इसलिए कई अंग्रेज़ फौजी अंग्रेज़ परिवारो की रक्षा के लिए रोक लिए जाते थे। इस सब के चलते विद्रोह तुरंत कुचला व दबाया न जा सका और समय मिलने के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक फैलता गया।

नाना साहब पेशवा

विद्रोह का फैलना

कई राज-परिवार जिनके राज्यो को अंग्रेज़ो ने हड़प लिया था, विद्रोह में शामिल होने लगे, जैसे अवध के पुराने नवाब और मराठा पेशवा नाना साहब।

> *क्या तुम जानते हो इस कविता द्वारा कौन प्रसिद्ध हुआ -*
>
> *"चमक उठी सन सत्तावन में*
> *वो तलवार पुरानी थी।*
> *खूब लड़ी मरदानी वो तो*
> *-------------------थी।।"*

विद्रोहियो की अंग्रेज़ सेना से मुठभेड़

सब तरफ से विद्रोही सिपाही और राजाओ की सेनाएं देहली की तरफ बढ़ने लगी। सब तरफ यह उम्मीद जाग उठी कि अंग्रेज़ो को भगाकर पुराने मुग़ल राज्य और पुरानी व्यवस्था लौटा लाई जायेगी।

गांव-गांव में विद्रोह

उत्तर-प्रदेश और बिहार मे विद्रोह की आग गांव-गांव कस्बा-कस्बा फैलती गई। किसानो व पुराने ज़मीदारो ने मिलकर हथियार उठाए और अंग्रेज़ो व उनके अफसरो को मार भगाया। उन्होने अंग्रेज़ो को लगान देना बंद कर दी, रेल की लाईनें तोड़ डाली, पुलिस थानो, डाकतार-घरो, कचहरियो को जला डाला और टेलीग्राफ के तार तोड़ दिए। ये सब वो नई चीज़े थी, जो अंग्रज़ो ने भारत में बनाई थी। अंग्रेज़ो को हारते देखकर लोगो में विद्रोह करने की हिम्मत और बढ़ती गई।

अंग्रेज़ी कानून की मदद से गांवो मे साहूकारो की ताकत बहुत बढ़ गई थी। विद्रोही लोगो ने उन साहूकारो के, जिनके पास किसानो की ज़मीन गिरवी थी, या जिन्होने किसानों की ज़मीन हड़प ली थी, घर लूट लिए, और उनके कागज़ात जला दिए।

विद्रोह का कुचलना

विद्रोहियो की इतनी बड़ी और व्यापक सफलता के बावजूद अंग्रेज़ धीर-धीरे स्थिति पर काबू पाने लगे।

विद्रोही बड़ी वीरता से लड़े। मगर उनमें दो बड़ी कमियां थी। हर शहर या प्रदेश के विद्रोही अलग-अलग अंग्रेज़ो से लड़ रहे थे। आपस मे मिल-जुल के एक योजनाबद्ध तरीके से नहीं लड़े। अतः अंग्रेज़ हरेक क्षेत्र के विद्रोहियों से अलग-अलग निपट पाए।

विद्रोहियो के पास आधुनिक हथियारो की सख़्त कमी थी। आधुनिक बंदूकें व तोप और उनके लिए कारतूस व बारूद तो विदेश से आते थे। अतः विद्रोहियों को पुरानी बंदूकों और तीर, भालो व तलवारों से लड़ना पड़ा। ऐसे हथियार आधुनिक बदूंकों के सामने आखिर कितनी देर टिक पाते?

फिर भी अंग्रेज़ इस विद्रोह की तीव्रता से बहुत डर गए। जब भी उन्हें विजय हासिल हुई - उन्होंने बड़ा ही निर्ममतापूर्ण व्यवहार किया। वे विद्रोहियो को अमानवीय तरीकों से मारकर गांव-गांव में पेड़ों पर लटका देते ताकि गांव वाले विद्रोह का अंजाम समझ सकें। कई विद्रोहियो को तोप के मुंह पर बांध कर बारूद्ध से चिथड़े-चिथड़े उड़ा दिया गया। अनेको विद्रोही सालो तक अंग्रेज़ो से छुपते फिरते रहे। कई तो नेपाल आदि जगहो पर छुपने चले गए।

अंग्रेज़ो ने मुग़ल बादशाह बहादुरशाह ज़फर को भारत से निकाल कर रंगून भेज दिया और रंगून में ही इस अंतिम मुग़ल बादशाह की मृत्यु हुई।

1857 का यह विद्रोह अंग्रेज़ों की ताकत को चुनौती देने वाला सबसे बड़ा विद्रोह था। इसे दबाने के बाद भारत पर उनकी पकड़ मज़बूत हो गई और वे अगले 90 सालो तक भारत पर शासन करते रहे।

1. सही विकल्प चुनो -
क. 1857 के विद्रोही मुग़ल काल की पुरानी व्यवस्था - हटाना/लौटाना चाहते थे।
ख. अंग्रेज़ी फौज की कमज़ोरी थी कि अधिकतर सैनिक - यूरोपीय/भारतीय थें।
2. विद्रोही फौजो की क्या कमज़ोरियां थीं?

कई लोग विद्रोह से दूर रहे

हमे यह नही सोचना चाहिए कि हर भारतीय अंग्रेज़ो के खिलाफ लड़ रहा था। पंजाब, बंगाल, दक्षिण भारत में विद्रोह नही के बराबर हुआ। कई ऐसे राजा थे जिनका राज्य तब तक सुरक्षित था। उन्होंने विद्रोह न करके अंग्रेज़ो का साथ दिया। ऐसे राजा थे ग्वालियर के सिंधिया, इंदौर के होलकर, हैदराबाद के निज़ाम, राजस्थान के राजपूत राजा, भोपाल के नवाब आदि।

कई ज़मीदार व साहूकार थे जिन्होने अंग्रेज़ी कानून

विद्रोहियों को फांसी पर चढ़ाया जा रहा है
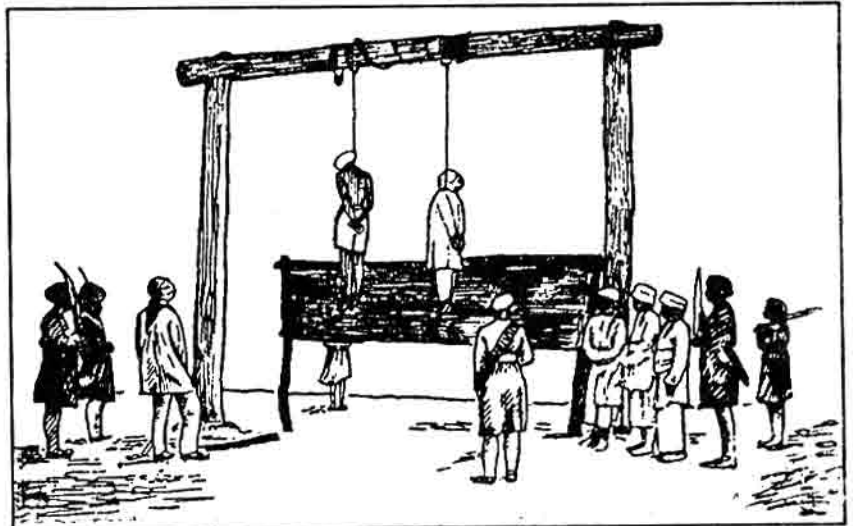
की सहायता से अपनी संपत्ति बढ़ा ली थी। वे भी अंग्रेज़ों से नहीं लड़े। कई ऐसे गांव थे जहां से अंग्रेज़ों द्वारा बनवाई गई नहरें निकली थीं। जिन गांव वालों ने इसका फायदा उठाया था - उन पर लगान का बोझ कम ही था। ऐसे गांव के लोगों ने भी अंग्रेज़ों का साथ दिया।

बंगाल और महाराष्ट्र में कई समाज सुधारक विद्वान हुए जो सोचते थे कि अंग्रेज़ों का विज्ञान, शिक्षा, कायदे-कानून अच्छे हैं और इनको अपनाकर भारतीयों को अपने पिछड़े समाज को सुधारना है - इसमें ही भारतीयों की भलाई है। वे साचते थे कि अंग्रेज़ों का विरोध न करके, उनसे सीखने का प्रयास करना चाहिए। उन्हें लगता था कि अगर मुग़ल बादशाह और नवाब व राजाओं का राज्य फिर से स्थापित हुआ तो भारत पिछड़ जाएगा। ऐसे विद्वानों ने भी अंग्रेज़ों का विरोध नही किया।

विद्रोह के बाद

सन् 1857 का विद्रोह दबाने में अंग्रेज़ों को एक साल से भी ज़्यादा लगा। इसी दौरान उन्होंने अपनी कई नीतियों को बदला और नई नीतियों को अपनाया।

सन् 1858 में ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने महत्वपूर्ण घोषणा की। घोषणा में उसने कहा कि भारत के राजा अपने-अपने राज्य में निश्चिंत होकर राज्य करें। अंग्रेज़ अब उन्हें हटाने की कोशिश नहीं करेंगे। इस प्रकार उन्होंने राज-परिवारों को अपने साथ कर लिया। इसी तरह ज़मींदारों को कई रियायतें दी गयी और उनसे वादा किया गया कि उनकी संपत्ति की रक्षा की जाएगी। पंडितों और मौलवियों से वादा किया गया कि भारतीय धर्मों के मामले में अंग्रेज़ी सरकार दखल नहीं देगी और पुरानी परम्पराओं को चलने देगी। यह भी वादा था कि भारतीयों को शासन में सहयोग के लिए शामिल किया जायेगा।

सच में अंग्रेज़ों को सन् 1857 में अपना राज्य हाथ से जाता दिखा था। अब उनकी पूरी कोशिश यही रही कि भारत के महत्वपूर्ण लोगों को हर प्रकार की रियायत देकर, उनसे समझौता कर लें ताकि उनका समर्थन अंग्रेज़ों को मिलता रहे।

o o o o

अभ्यास के प्रश्न

1. यूरोपीय व्यापारी कंपनियों ने भारत में सेना क्यों रखी थी? कंपनी के काम में तुम्हें सेना का क्या महत्व नज़र आता है?
2. भारत के राज्यों में दखल करके कंपनियां कौन-कौन से फायदे हासिल कर पाती थी - चार उदाहरण बताओ।
3. 1857 तक भारत के कौन लोग अंग्रेज़ों के शासन के खिलाफ हुए और कौन लोग खिलाफ नहीं हुए - समझा कर लिखो।
4. क. लोगों ने सन् 1857 में किन तरीकों से अंग्रेज़ों का विरोध किया?
   ख. वे विरोध करके क्या पाना चाहते थे?
5. 1858 में इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में विद्रोहियों की कौन-कौन सी शिकायतें दूर कीं?

7 नए विचार और समाज सुधार की कोशिश
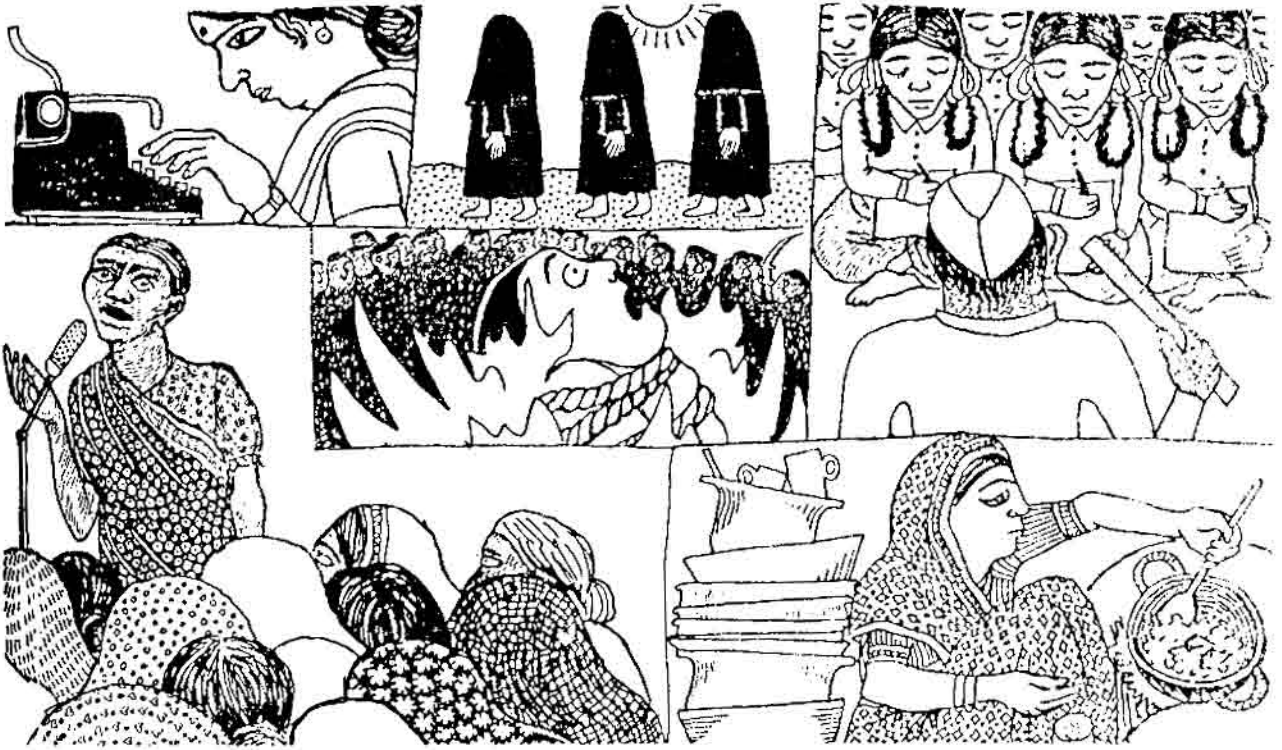
ऊपर महिलाओं के बारे मे कई चित्र बने है।

तुम्हारे विचार में इनमें से कौन सी बातें 200 साल पहले हो ही नहीं सकती थीं?

महिलाओं की स्थिति में अंग्रेज़ शासन के समय से बहुत बदलाव आए हैं।

हमारे विचार सिर्फ महिलाओं के प्रति ही नहीं, परंतु जातपात, धर्म, ईश्वर आदि के बारे में भी काफी बदले हैं।

आओ, देखें कि अंग्रेज़ों के समय में नए विचार कैसे फैले और समाज सुधार की क्या कोशिशें हुईं।

समाज की रीतियो को सुधारने की कोशिश अपने इतिहास मे समय-समय पर होती रही है। अंग्रेज़ों के समय में ये कोशिशें विशेष रूप से हुईं।

अंग्रेज़ी शिक्षा की मांग

शुरू मे अंग्रेज़ों ने पाठशालाओं और मदरसो को बढ़ावा दिया। पाठशालाओं में संस्कृत में शास्त्रों, पुराणों और व्याकरण का अध्ययन कराया जाता था और मदरसो मे कुरान व अन्य धार्मिक ग्रंथों को पढ़ाया जाता था। जो भारतीय लोग अंग्रेज़ों के संपर्क में आए थे और इंग्लैंड में दी जाने वाली शिक्षा की जानकारी रखते थे, वे इस बात से खुश नहीं थे कि अंग्रेज़ भारत मे पारंपरिक शिक्षा को बढ़ावा दें। ये वे भारतीय थे जो अंग्रेज़ सरकार के प्रशासन मे नौकरी करने लगे थे, वकालत करते थे, या अंग्रेज़ी व्यापारियो के साथ काम करते थे। ये लोग अंग्रेज़ों के विचारों से प्रभावित हुए और चाहने लगे कि अपने समाज में भी बदलाव आए। वे चाहते थे कि अंग्रेज़ी शिक्षा भारत में फैलाई

जाए ताकि भारतीय लोग नए ज्ञान विज्ञान को सीखें और अंग्रेज़ों के समान विकास करें।

उनमें से एक थे राजा राम मोहन राय। वे बंगाल के एक ज़मींदार परिवार के थे। एक बार जब उन्हें पता चला कि अंग्रेज़ सरकार कलकत्ता में एक संस्कृत पाठशाला शुरू करवा रही है तो उन्होंने अंग्रेज़ सरकार को एक ज़ोरदार चिट्ठी लिख कर अंग्रेज़ी शिक्षा की मांग की। उन्होंने लिखा - *"हमें पता चला है कि सरकार पंडितों के संरक्षण में एक संस्कृत पाठशाला खोल रही है जिसमें ऐसा ज्ञान दिया जाएगा जो भारत में वैसे ही चला आ रहा है। ऐसी पाठशाला युवाओं के दिमाग में सिर्फ व्याकरण के बारीक नियम और दूसरे लोक का ज्ञान भर सकती है और ऐसा कुछ नहीं दे सकती जो विद्यार्थी या समाज के लिए व्यावहारिक रूप से उपयोगी हो।*

चूंकि सरकार का उद्देश्य स्थानीय लोगों को बेहतर बनाना है, इसलिए वह गणित, दर्शन शास्त्र, रसायन शास्त्र, शरीर रचना शास्त्र और दूसरे उपयोगी विज्ञान को बढ़ावा दे। यह काम यूरोप में शिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त करके और पुस्तकों व उपकरणों से सुसज्जित कॉलेज बनाकर पूरा किया जा सकता है।" कलकत्ता 11 दिसम्बर 1823.

राजा राम मोहन राय की तरह ही देश भर में हज़ारों अन्य लोगों ने अंग्रेज़ सरकार पर दबाव डाला

अंग्रेज़ी कचहरी में काम कर रहे भारतीय : इन्होंने सबसे पहले अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की

कि वह भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा की व्यवस्था तुरंत करे। लोगों को यह विश्वास हो गया था कि विज्ञान की जानकारी के कारण ही यूरोप के देशों का दुनिया के अन्य देशों के मुकाबले में ऊंचा स्थान है। भारत के पिछड़ेपन का यही कारण है कि यहां पर वैज्ञानिक शिक्षा की कमी है। भारत के लिए यह पिछड़ापन दूर करके यूरोपीय देशों के बराबर होना सबसे महत्वपूर्ण बात है।

उधर, अंग्रेज़ सरकार खुद समझने लगी थी कि अगर उसे भारत में लंबे समय तक शासन करना है तो अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों की बहुत ज़रूरत होगी। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों के बगैर इतने लंबे-चौड़े प्रशासन का काम कौन संभालेगा? यह तो ठीक था कि इंग्लैंड के लोगों को भारत लाकर सरकारी अधिकारी बनाया जाएगा। पर छोटे से बड़े, सभी कामों के लिए अंग्रेज़ी अधिकारी व कर्मचारी रखें तो यह महंगा भी पड़ेगा। इसलिए, कम से कम बाबू, कर्मचारी व छोटे अधिकारियों के पदों के लिए अंग्रेज़ी में शिक्षित भारतीय लोगों की ज़रूरत पड़ेगी। यह सोच कर अंग्रेज़ सरकार ने भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा फैलाने की योजना बनाई। चूंकि इसे सबसे पहले लॉर्ड मैकॉले नाम के अंग्रेज़ अधिकारी ने बनाया था यह मैकॉले की शिक्षा नीति के नाम से जानी जाती है।

भारत में बड़ी संख्या में लोगों ने सरकार की मदद

से अंग्रेज़ी स्कूल व कॉलेज खोलने शुरू किए।

अंग्रेज़ी शिक्षा देने वाले इन स्कूलों में क्या पढ़ाया जाता था? अंग्रेज़ी भाषा, भारतीय भाषा, विज्ञान, भूगोल, इतिहास व गणित। सिर्फ ईसाई पादरियों द्वारा चलाए गए स्कूलों में अलग से बाइबल का अध्ययन भी कराया जाता था।

अंग्रेज़ी शिक्षा भारतीय लोगों को क्यों ज़रूरी लगी? और अंग्रेज़ सरकार को क्यों ज़रूरी लगी?

नया ज्ञान, नए विचार

अंग्रेज़ी शिक्षा का असर

क्या तुम सोच सकते हो कि छोटे शहर और गांव के छात्र जब इन नए स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ने जाते थे तो उनके मन पर कैसा असर होता था?

लाहौर के कॉलेज में पढ़ने वाले एक छात्र रुचि राम साहनी ने अपने अनुभव के बारे में लिखा - "मैं अपने शिक्षकों का एहसानमंद तो हूं ही पर यह भी कहना चाहता हूं कि लाहौर के शासकीय महाविद्यालय में आकर मैंने अपनी आंखों के सामने ज्ञान का ऐसा खज़ाना खुला पाया जैसा मैंने पहले कभी नही देखा था। वैसे तो कॉलेज की सारी किताबें एक बड़े हॉल में रखी पंद्रह अलमारियों में आ जाती थी। पर फिर भी, जिस आदमी ने कभी कोई पुस्तकालय न देखा हो, और जो ज्ञान का प्यासा हो, उसके लिए तो सरकारी स्कूल का छोटा पुस्तकालय और सरकारी कॉलेज का बड़ा पुस्तकालय अनमोल मोतियो से भरे सागर जैसा था - जिसमें कोई भी गोता लगा के ज्ञान के मोतियों को पा सकता था।"

अंग्रेज़ी शिक्षा देने वाले नए स्कूल कॉलेज बने

स्कूल-कॉलेज के छात्र कक्षाओं के बाद पुस्तकालय से नई नई किताबें ले कर पढ़ते थे। इनमें इंग्लैंड व यूरोप में लिखी गई कई महत्वपूर्ण किताबें थी। यूरोप की नई दुनिया को समझने की तेज़ ललक और जिज्ञासा से भरे छात्र अंग्रेज़ी भाषा में लिखी किताबों को बड़ी मेहनत से बांचने की कोशिश करते थे, जबकि किताबें उनके कोर्स की भी नहीं थी।

रुचि राम साहनी लिखते हैं - "मैं और गुरुदत्त मिलकर जॉन स्टुअर्ट मिल की छोटी सी किताब को लाईन दर लाईन, पैरा दर पैरा पढ़ते जाते, उसके अर्थ को समझते जाते, उस पर चर्चा और बहस करते जाते। कभी-कभी तो हम घंटे भर में एक-दो वाक्य से ज़्यादा नही कर पाते थे क्योंकि या तो हम लेखक की बातों के असली मतलब को पकड़ नही पाते थे, या पूरा समय इसी चर्चा में निकल जाता था कि किताब की बातों को हम खुद कहां तक अपना सकते हैं।"

नए स्कूल-कॉलेज में पढ़े लोग अंग्रेज़ी विचारों और संस्कारों से बहुत प्रभावित हुए। उनकी तुलना में भारतीय समाज व धर्म के कई विचार व संस्कार इन लोगों को बहुत गलत लगने लगे। उन्होंने तरह तरह के सवाल खड़े किए। जैसे :

"ईश्वर मूर्तियों और मंदिरों में कैसे हो सकता है? क्या किसी ने कभी ईश्वर को देखा है? ईश्वर का रंग, रूप, आकार कैसे हो सकता है?"

"छुआछूत और जातपात के नियमों का क्या मतलब हैं? सब इंसान बराबर है - ईश्वर की संतान हैं। तब जाति का भेदभाव क्यों माना जाए?"

"औरतें क्या पुरुष के बराबर इंसान नहीं हैं? हमारे धर्म व समाज में औरतों के साथ इतना क्रूर व्यवहार क्यों होता है? हम अपने आपको सभ्य कहते हैं तो औरतों के प्रति हो रही क्रूरता को क्यों मानते जाएं?"

राजा राम मोहन राय ने ब्रह्मो समाज की शुरुआत की

लोगों के मन में उथल पुथल मची हुई थी.। हर परंपरा व नियम को लोग उधेड़ उधेड़ कर देख रहे थे और विश्लेषण कर रहे थे। क्या गलत है? क्या सही है? समाज बिगड़ा कैसे? क्या हमेशा से बिगड़ा हुआ था? समाज सुधरेगा कैसे? ये सवाल लोगों के मन को मथने लगे थे।

अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों को क्या नई बात मिली?
इन छात्रों के मन में उठे सवालों पर विचार करो।
तुम इन सवालों के बारे में क्या सोचते हो?

समाज सुधार का अभियान

अंग्रेज़ अधिकारी और यूरोपीय पादरी भी भारतीय समाज की बुराइयों को उजागर कर रहे थे। अंग्रेज़ अधिकारियों को लगता था कि उन्हें नए कानून बना कर इन बुराइयों को रोकना चाहिए। ईसाई पादरियों को लगता था कि उन्हें ईसाई धर्म फैला कर भारतीय समाज को सुधारना चाहिए।

इस माहौल में कई पढ़े-लिखे भारतीय लोग भी अपने समाज की बुराइयों का विरोध करने के लिए एकजुट होने लगे। कुछ लोगों ने ईसाई धर्म अपनाया। कुछ लोगों ने ईसाई धर्म अपनाने का विचार किया पर फिर कुछ सोचकर रुक गए। ऐसे एक व्यक्ति थे महाराष्ट्र के मोरो विट्ठल वालावेकर, जो लिखते हैं - "मैं जब पढ़ता ही था तभी हिन्दू धर्म से मेरा विश्वास उठ गया और मेरा मन ईसाई धर्म की ओर मुड़ने लगा। पर मैंने सोचा कि नया धर्म अपनाने से पहले पुराने धर्म से उसकी तुलना कर लेनी चाहिए। इस तरह मैंने ईसाई धर्म का अध्ययन किया तो पाया कि हिन्दू धर्म की तरह उसमें भी कई अंध विश्वास हैं। तब मुझे लगा कि कोई भी धर्म भगवान की देन नहीं है।

दरअसल सब धर्मों की मूलभूत बातें एक सी हैं और ये हमें अपने विवेक से ही पता चलती हैं। यह प्राकृतिक धर्म हर जगह पाया जाता है अतः यही सच्चा धर्म होगा। इसका सार यह है कि :

ईश्वर एक ही है और हमें उसी को मानना चाहिए।
दूसरों की भलाई करना सबसे बड़ा पुण्य है।
दूसरों का अहित करना सबसे बड़ा पाप है।

इन सामान्य धार्मिक सिद्धांतों को तय करने पर हमने ईसाई बनने की योजना त्याग दी।"

मोरो विट्ठल जैसा अनुभव कई लोगों को हुआ। वे न तो ईसाई बने और न ही पांरपरिक हिन्दू रहे। उन्होंने अपने नए धार्मिक विचारों के अनुसार कार्य करने के लिए नए संगठन बनाए जैसे, बंगाल में ब्रह्मो समाज बना और महाराष्ट्र मे परमहंस मंड़ली बनी।

यूरोपीय विचारो से प्रभावित होने के बाद भी कई भारतीयों ने ईसाई धर्म क्यों नहीं अपनाया? यूरोपीय विचारों से प्रभावित कई भारतीय लोगों के विचारो में ऐसी क्या बात थी कि वे पांरपरिक हिन्दू धर्म भी नहीं मान पाए?

समाज सुधार का विरोध

पर क्या तुम सोच सकते हो कि इस प्रकार के नए धार्मिक विचार रखने वाले लोगों का समाज में कितना विरोध हुआ? परमहंस मंडली के लोग बंबई में गुप्त रूप से बैठकें करते थे। बैठक में मंडली के सब सदस्य इक्ट्ठा हो कर, मिल कर भोजन करते थे। सदस्य अलग अलग जाति के थे। वे इकट्ठे भोजन करके जाति पाति के भेदभाव को तोड़ना चाहते थे। पर यह काम वे खुले आम नहीं कर पाते थे। इसलिए एक किराए के कमरे में गुप्त रूप से मिलते थे। जब मकान मालिक को यह सब पता चला तो उसने उन्हें कमरा देने से मना कर दिया।

मंडली के लोग सोचते थे कि जब उनके एक हज़ार सदस्य हो जाएंगे तभी वे खुल कर अपने विचारों का प्रचार करेंगे।

समाज के समाने खुल कर आने में मंडली की हिचकिचाहट सही भी थी। ब्रह्मो समाज के लोग खुली सभा में उपदेश देते थे। वे कहते थे कि सब धर्मो में अच्छाइयां हैं .... ईसा मसीह व मोहम्मद पैगंबर महान संत थे। यह सुन कर सभा में बैठे लोग उठकर बाहर दौड़ पड़ते थे। भागते हुए लोग यह कहते जाते थे कि अरे रे रे - ये ब्रह्मो समाज वाले तो ईसाई हैं - अरे ये तो मुसलमान हैं ....।

इससे हम जान सकते हैं कि लोगों के बीच अपने विचार रखने में समाज सुधारकों को कितनी मुश्किल आती थी। कई माता पिता अपने बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूल में भेजने से डरने लगे और अखबारों में ऐसी चिट्ठियां छपी जिनमें लोगों से अपील की गई कि वे अपने बच्चों को अंग्रेज़ी सीखने न भेजें क्योंकि ये बच्चे अपने धर्म में विश्वास खो बैठते हैं और जाति प्रथा को ठुकराने लगते हैं।

***परमहंस मंडली के सदस्यों का छिप कर जातपात के नियम तोड़ना तुम्हें कैसा लगा? क्या उन्होंने ठीक किया था?
अगर तुम ब्रह्मो समाज की सभा में होते तो क्या उठ के चले जाते? लोगों के बैठक से चले जाने के बारे में तुम क्या सोचते हो?
क्या आज भी माता पिता बच्चों को अंग्रेज़ी शिक्षा देने से कतराते हैं?***

वास्तव में उन दिनों परंपरावादी लोगों और नए विचार रखने वाले लोगों में युद्ध सा छिड़ा हुआ था जो काफी हद तक आज भी जारी है। उन दिनों तो बाकायदा शास्त्रार्थ हुआ करते थे। नए और पुराने विचार के लोग किसी आम जगह पर आकर एक दूसरे से वाद विवाद करते थे और जनता खड़ी हो कर उनकी बातें सुनती थी। फिर दोनों पक्ष की बातें छोटी पुस्तकों के रूप में छाप कर बांटी जाती थीं।

आओ, ऐसे एक शास्त्रार्थ की झलक देखें जिसमें पांरपरिक धर्म का समर्थन करने वाले सती प्रथा को सही बता रहे हैं।

सती प्रथा पर शास्त्रार्थ

पंडित तर्कालंकार और राम मोहन राय के बीच सती प्रथा को ले कर बहस हुई। तर्कालंकार सती प्रथा के पक्ष में थे जबकि राम मोहन राय सती प्रथा खत्म करना चाहते थे।

तर्कालंकार ने कहा : "ऋषि अंगीरा ने कहा है कि जो औरत स्वर्ग की कामना करती है उसे पति की चिता में जल कर मर जाना चाहिए।"

राम मोहन : "पर, मनु और याज्ञवल्क्य ने कहा है कि पति की मृत्यु के बाद औरत को सरल व सादा जीवन बिताना चाहिए। उन्होंने विधवा औरत को सती होने के लिए नहीं कहा।

फिर, आप लोग तो औरत को पति की चिता के साथ बांध देते हैं। और ऊपर से खूब सारी लकड़ी जमा देते हैं ताकि वह चाहे भी तो उठकर न भाग सके। जब चिता को आग लगाते हैं तो औरत को बांसों से दबाए रखते हैं। यह तो सरासर स्त्री हत्या है। ज़बरदस्ती विधवा को जलाने की बात किस शास्त्र में लिखी है।"

पंडित तर्कालंकार : "यह बात तो किसी शास्त्र में नही लिखी पर हमारे देश में ऐसा करना एक बहुत पुरानी परंपरा है। इसलिए सती तो होनी ही चाहिए।"

राम मोहन : "सती हमारे देश में हर समय व हर जगह नही होती आई है। फिर भी, यह सोचिए कि चोरी व हत्या भी तो पुराने समय से हो रही है। क्या आप इन्हें भी सही मानेंगे? पुरानी होने के बावजूद हम चोरी व हत्या जैसे अपराधों का विरोध करते हैं। वैसे ही सती प्रथा स्त्री हत्या है - एक अमानवीय अपराध है। अतः इसे बंद करना चाहिए।"

अगर सब ऋषि मुनियों के शास्त्रों में यह लिखा होता कि विधवा औरत को सती हो जाना चाहिए तब तुम्हारे विचार में आज भी उस रीति का पालन होना चाहिए या नहीं? कारण भी बताओ।

सती के चारों तरफ लोग तलवारें लिए क्यों घूम रहे हैं?

तुम खुद ही सोचो क्या जीवन के अधिकार को ले कर स्त्री और पुरुष के लिए अलग अलग नियम होने चाहिए? किसी स्त्री की मृत्यु पर उसके पति से तो आशा नहीं की जाती कि वह अपनी पत्नी के साथ जल मरे। तो स्त्री के लिए सती होने की रीति क्या उचित है?

औरतों के लिए नए कानून

राम मोहन राय की कोशिशों के कारण अंग्रेज़ सरकार ने 1829 में सती प्रथा रोकने का कानून लागू किया। पर औरतों के साथ अन्याय करने वाली कई और रीतियां भी थी। ऊंची कहलाने वाली जातियों में विधवा औरतों को दुबारा शादी करने की अनुमति नही थी। विधवा स्त्री को सफेद कपड़े पहनने होते थे, बाल कटाने पड़ते थे और उसे शुभ अवसर पर नही बुलाया जाता था।

जबकि विधुर पुरुष दुबारा शादी कर सकता था। राम मोहन राय जैसे अन्य समाज सुधारकों ने विधवाओं के हित में भी आवाज़ उठाई और मांग की कि विधवाओं को दुबारा शादी करने की अनुमति होनी चाहिए और इसके लिए कानून बनना चाहिए। यह अभियान छेड़ने वालों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रमुख थे।

विधवा औरत

विधवाओं की दुबारा शादी की बात इसलिए बहुत महत्वपूर्ण बन गई थी क्योंकि छोटी बच्चियों की शादी कर दी जाती थी। बचपन में ही अगर वे विधवा हो जाएं तो पूरी लंबी ज़िंदगी भर उन्हें विधवा बन के दुख में जीना पड़ता था।

1856 में यह कानून बना कि विधवा बच्चियों की दुबारा शादी की जा सकती है।

कुछ प्रांतों के लोगों के बीच लड़की को जन्म के तुरंत बाद मार देने का भी रिवाज़ था। लड़की के जीवन का इतना भी मूल्य नहीं समझा जाता था कि उसे जीवित रहने दिया जाए।

नई जन्मी लड़की को मार देना भी ग़ैर कानूनी बनाया गया।

इस तरह लड़कियों व औरतों के प्रति क्रूरता और अत्याचार की कुछ मुख्य बातों पर सरकार ने कानूनी रोक लगाई। सरकार के अधिकारियों और राम मोहन राय, विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, महादेव गोविंद रानाडे व कई अन्य समाज सुधारकों ने इन कानूनों को लागू करवाने की कोशिश की। धीरे-धीरे कई लोगों ने उनका समर्थन किया पर उनका विरोध करने वालों की भी कमी नहीं थी।

तुम तब होते या होतीं तो इन नई बातों का समर्थन करते/करतीं या विरोध? कारण बताओ। क्या आज भी ये कुरीतियां पाई जाती हैं?

महिलाओं की शिक्षा

महिलाओं के खिलाफ चल रही कुप्रथाओं पर रोक लगाने के अलावा, समाज सुधारकों ने महिलाओं की शिक्षा के लिए अभियान शुरू किया। विद्यासागर जैसे लोगों को लगता था कि महिलाओं के जीवन का अपना महत्व है। उन्हें भी अपनी बुद्धि का विकास करने का अधिकार होना चाहिए। अतः महिलाओं की स्थिति सुधाराने के लिए उन्हें आधुनिक शिक्षा देना ज़रूरी है।

इन समाज सुधारकों के प्रयासों से लड़कियों के लिए कई स्कूल खोले गए। पर इन शालाओं का भी खूब विरोध हुआ। लोग सोचते थे कि लड़कियां पढ़ लिख जाएंगी तो वे अपने पति से दब के नहीं रहेंगी और घर के काम नहीं करेंगी। कुछ लोग तो यह मानते थे कि पढ़ी लिखी औरत का पति जल्दी मर जाएगा। जो मां बाप हिम्मत करके आगे आते थे और अपनी लड़कियों को पढ़ने भेजते थे उन्हें समाज से निकाल दिया जाता था। बहुत कोशिश व साहस करके लड़कियां पढ़ने आने लगीं।

लड़कियां स्कूल जाने लगी

पर आज भी, इतने सालों बाद लड़कों की तुलना में लड़कियां कम पढ़ाई जाती हैं।

इस बात के लिए तुम अपने स्कूल का उदाहरण दो। तुम्हारे घर में लड़कों को ज़्यादा पढ़ाने के लिए क्या तर्क दिया जाता है? क्या तुम्हें यह सही लगता है? आजकल लड़कियों को क्यों पढ़ाते हैं? चर्चा करो।

ऐसी एक लड़की की कहानी पढ़ें जिसने अंग्रेज़ो के समय में औरतों के विकास के लिए बहुत हिम्मत से काम लिया।

1889 में शुरू किया गया शारदा सदन

पंडिता रमाबाई सरस्वती

रमाबाई का जन्म सन् 1858 में हुआ था। उनके पिता अनन्त शास्त्री महाराष्ट्र के एक पारंपरिक ब्राह्मण थे। उन्होंने अपनी पत्नी को संस्कृत पढ़ाना शुरू किया। उनका इतना विरोध हुआ कि उन्हें गांव छोड़ कर जाना पड़ा और जंगल में कुटिया बना कर रहना पड़ा। वही रमाबाई का जन्म हुआ। अनन्त शास्त्री ने अपनी बेटी को भी संस्कृत सिखाई और शास्त्र व पुराण पढ़ाए। जब रमाबाई केवल 16 वर्ष की थी तो उनके माता पिता दोनों का देहांत हो गया। अनाथ रमाबाई व उनका भाई जगह जगह भटकते रहें - पर किसी ने उन्हें आश्रय नही दिया क्योंकि पढ़ी लिखी लड़की से सब कतराते थे और उसे दोष देते थे, जैसे वह कोई पाप कर रही हो।

तीर्थ यात्री के भेष में रमाबाई बृन्दावन से विधवा बच्चियों को बचाने चली।

रमाबाई घूमती घूमती जब कलकत्ता पहुंची तो वहां उनका बहुत स्वागत हुआ। वहां राम मोहन राय, विद्यासागर आदि से प्रभावित कई लोग थे जो महिलाओं के बारे में नए विचार रखते थे। वहां रमाबाई ने कई जगहों पर महिलाओं की हालत सुधारने पर संस्कृत में भाषण दिए। कलकत्ता के लोगों ने उन्हें पंडिता व सरस्वती की उपाधि दी। अब वे पंडिता रमा बाई सरस्वती कहलाई। आगे जाकर रमाबाई ने ईसाई धर्म को अपनाया।

बंगाल में ही रमाबाई ने 22 वर्ष की उम्र में अपनी पसंद के एक आदमी से विवाह कर लिया। उन दिनों एक औरत का 22 वर्ष तक अविवाहित रहना और फिर अपनी पसंद के व्यक्ति से शादी करना बहुत ही अनहोना काम था।

रमाबाई ने अपना पूरा जीवन महिलाओं की मदद करने में लगा दिया। वे विधवा हो गई, उसके बाद भी वे बेझिझक अपने काम में लगी रही। वे अकेले इंग्लैंड व अमेरीका भी गईं ताकि वहां के महिला संगठनों के बारे में जान पाएं। भारत आकर उन्होंने विधवा महिलाओं को शिक्षित करने के लिए शारदा सदन नाम

का आश्रम व स्कूल शुरू किया। शारदा सदन में महिलाओं को कई हुनर व काम भी सिखाये जाते थे ताकि वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकें।

महिलाओं का अपने पैरों पर खड़ा होना रमा बाई को बहुत ज़रूरी लगता था। वे कहती थी कि महिलाएं सब कुछ चुपचाप सहती हैं क्योंकि वे पुरुषों पर निर्भर करती हैं। "पुरुष हम महिलाओं से ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे जानवरों के साथ किया जाता है। जब हम अपनी स्थिति सुधारने का प्रयास करती हैं तो कहा जाता है कि हम पुरुषों के खिलाफ बगावत कर रही हैं और यह पाप है। दरअसल सबसे बड़ा पाप तो पुरुषों के कुकर्मों को सहना और विरोध न करना है।"

एक सभा में भाषण की शुरूआत रमाबाई ने इस प्रकार की - "आदरणीय सभागण, आपको मेरी कमज़ोर आवाज़ पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए। भारत की औरतों को बोलने का मौका ही नही दिया गया है तो उनकी आवाज़ मज़बूत कैसे हो?"

उनकी शिकायत थी कि जिस तरह इंग्लैंड में भारत के लोगों की सुनवाई नही होती उसी तरह भारत के समाज में उसकी महिलाओं की सुनवाई नही होती।

> *औरतों की तरफ से पंडिता रमाबाई सरस्वती ने समाज से जो शिकायतें कीं, क्या वे तुम्हें उचित लगती हैं?*
> *क्या कोई लड़की बताना चाहेगी कि लड़की होने के नाते उसे कक्षा में क्या परेशानियां होती हैं?*
> *अक्सर कक्षा में लड़कियां बहुत धीमे बोलती हैं या चुप रहती हैं। ऐसा क्यों? रमाबाई के विचार में इस बात का क्या कारण होता?*

संत कवियों की परंपरा और आर्यो की वैदिक संस्कृति

अंग्रेज़ों के समय में जो नए विचार फैले उनसे प्रभावित हो कर कुछ लोग एक नये रास्ते पर चले। लेकिन समाज के अधिकतर लोगों को अपनी पुरानी परंपराओं और रीतियों से गहरा लगाव था और नई बातें अपनाने में उन्हें झिझक थी। सब के मन में यह प्रश्न था कि हमारी संस्कृति और परंपरा में क्या सुधारवादी बातें हैं ही नहीं? और क्या हमें उनसे प्रेरणा नही मिल सकती?

लोगों ने पाया कि पुराने समय में ऐसे संत कवि हुए हैं जिन्होंने समाज व धर्म की बुराइयों को उजागर किया है और नई भावनाओं के अनुसार लोगों को जीना सिखाने की कोशिश की है। संत रामदास, रैदास, नानक, कबीर, तुकाराम .... सभी ने जाति पाति की ऊंच नीच, ब्राह्मणवाद, मूर्ति पूजा, कर्मकांड का विरोध किया है और लोगों को एक ही ईश्वर की सीधी साधी भक्ति करना सिखाया है और सब मनुष्यों में समानता की बात सिखाई है।

समाज सुधारकों ने इन पुराने संतों की सीख की सहायता से समाज में नए विचार फैलाने की कोशिश की। महाराष्ट्र के प्रार्थना समाज के सुधारकों ने संत तुकाराम की वाणी का विशेष रूप से प्रचार किया।

एक तरफ संत कवियों से प्रेरणा लेने की कोशिश हुई और दूसरी तरफ कुछ लोगों ने आर्यो की वैदिक संस्कृति से भी समाज सुधार की प्रेरणा ली।

दयानंद सरस्वती नाम के एक सन्यासी थे। उन्होंने यह तर्क दिया कि वैदिक युग में आर्यो की जो संस्कृति थी उसमें आजकल की बुराइयां नही थी। जैसे वैदिक युग में मूर्ति पूजा, कर्म कांड, बाल विवाह, अछूत प्रथा, विधवा विवाह पर रोक

दयानन्द सरस्वती

जैसी रीतियां नही होती थीं। सब बुराइयां बाद मे समय के साथ समाज मे आई हैं और पुराणो आदि ग्रंथो मे लिखी गईं। इसलिए उन्होने यह अभियान छेड़ा कि लोगो को आर्यो की वैदिक संस्कृति फिर से अपनानी चाहिए। इसके लिए उन्होंने आर्य समाज नाम का संगठन बनाया।

यह संगठन पंजाब में बहुत लोकप्रिय हुआ। उत्तर प्रदेश और राजस्थान में भी इसका असर रहा।

आर्य समाज ने 'संस्कार विधि' नाम की पुस्तक तैयार की। इसमें विस्तार से बताया गया कि जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के संस्कार वैदिक विधि से कैसे किए जाने चाहिए। जगह जगह छोटे-बड़े शहरों में आर्य समाज की शाखाएं खोली गईं और उसके सदस्य बनाए गए। यह कोशिश की गई कि लोग वैदिक विधि को खुद समझें और उसी के अनुसार जीवन के सब संस्कार करें। धीरे धीरे बहुत संख्या में लोग आर्य समाज का साथ देने लगे।

ज़ाहिर है इस बात का परंपरावादी ब्राह्मणों व पंडितो ने बहुत विरोध किया और उन्होंने भी पांरपरिक हिन्दू धर्म, जिसे वे सनातन धर्म कहते थे, की रक्षा के लिए सनातन धर्म सभाएं बनानी शुरू कर दीं।

एक तरफ जहां धार्मिक संस्कारो के मामले में आर्य समाज का काफी विरोध होता रहा वही आर्य समाज के एक दूसरे कार्यक्रम को बहुत अधिक सफलता मिली। यह था दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज व स्कूल का कार्यक्रम। यह स्कूल आर्य समाज ने लाहौर में स्थापित किया। इसका उद्देश्य था बच्चों को आधुनिक अंग्रेज़ी ज्ञान विज्ञान की अच्छी शिक्षा के साथ साथ संस्कृत और वेदो की शिक्षा भी देना। इससे लोगों के मन की दोनो इच्छाएं पूरी होती थी। उनके बच्चों को अंग्रेज़ी शिक्षा भी मिलती थी जिससे नौकरी और नया ज्ञान मिलता था और बच्चे अपने धर्म की बातें भी सीखते थे।

समाज सुधारकों ने नए विचार फैलाने के लिए भारतीय संस्कृति की किन बातों की सहायता ली?
संत कवियों और वैदिक संस्कृति की बातों का प्रचार करने पर भी परंपरावादी पंडितों व लोगों ने समाज सुधारकों का विरोध क्यों किया?
दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल लोकप्रिय क्यों हुआ?

मुस्लिम सुधार आंदोलन

जैसे सुधारवादी हिन्दुओं को ब्राह्मणों व पंड़ितो से लड़ना पड़ रहा था वैसे ही सुधारवादी मुसलमानों को मौलवियों से लड़ना पड़ा। अधिकांश मौलवी अंग्रेज़ी शासन के सख़्त खिलाफ थे और उन्होंने अंग्रेज़ी शिक्षा का भी कड़ा विरोध किया।

सर सय्यद अहमद खां

परंपरावादियो के विरोध के बावजूद कुछ मुसलमानो ने अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने लोगो के बीच नए विचार फैलाने की कोशिश की। नए विचारो व अंग्रेज़ी शिक्षा का आग्रह करने वालों में सर सैयद अहमद खां और डा. इकबाल प्रमुख थे। इस प्रकार के लोगो ने मुस्लिम औरतों के बुरका पहनने का कस के विरोध किया। कुछ सुधारवादी मुसलमानों ने तो हठ कर के अपनी बेटियो का पर्दा हटवाया और उन्हें अपने साथ घर से बाहर लाने की कोशिश की।

हिन्दुओं की तरह मुसलमान लोगो को भी अंग्रेज़ी शिक्षा अपनाने मे अपने धर्म की रक्षा का डर रहता

था। मुसलमानों के बीच भी ऐसी शिक्षण संस्थाएं बनाने की कोशिश हुई जिससे कि लोगो को आधुनिक शिक्षा और अपने धर्म की मूल बातें - दोनों मिल सकें। मुसलमानो के लिए खोली जाने वाली संस्थाओं मे अलीगढ़ का अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली का जामिया मिलिया इस्लामिया व यूनानी आयुर्वेदिक कॉलेज प्रमुख थीं। इनमें मुस्लिम औरतों की शिक्षा को भी विशेष रूप से बढ़ावा देने की कोशिश हुई।

शूद्र मानी जाने वाली जाति के छात्रों को स्कूल से भगा दिया जाता था।

गैर ब्राह्मण जातियों के सुधार आंदोलन

तुमने देखा है कि जातपात, छूआछूत, कर्मकांडों का विरोध सभी समाज सुधारक कर रहे थे। पर ये समाज सुधारक मुख्य रूप से ऊंची कहलाने वाली जातियो के लोग थे। उन्ही दिनो नीची कहलाने वाली जातियों मे भी समाज सुधारक हुए और इन जातियों के लोगो ने आगे आकर जातपात व कर्मकांडो की व्यवस्था को उखाड़ फैकनें का प्रयास किया।

आमतौर पर हिन्दू राजा जातपात के नियमों को सख्ती से लागू करवाते थे। पर अंग्रेज़ सरकार ने कोर्ट-कचहरी के ज़रिए जातपात के नियमो को लागू करने से इनकार कर दिया।

जोतिबा फूले

फिर ईसाई पादरियों द्वारा चलाए गए स्कूलों में नीची कहलाने वाली जातियों के बच्चों को भी बराबर से शिक्षा देने की कोशिश हुई।

इस तरह के माहौल में नीची कहलाने वाली जातियो के कई लोग पढ़ लिख कर आगे आए और बहुत साहस से समाज सुधार के काम मे लगे। इस प्रकार के समाज सुधार आंदोलन महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक तमिल नाडू, आंध्र प्रदेश में बड़े पैमाने पर हुए।

आओ महाराष्ट्र में जोतिबा फुले के नेतृत्व में छिड़े आंदोलन के उदाहरण से कुछ बातें समझें।

जोतिबा फूले माली जाति के थे और सब्ज़ियां व फूल बेचने का धंधा करते थे। उन्होंने एक ईसाई स्कूल में कुछ साल शिक्षा पाई थी। जब वे बड़े हुए तो वे अपनी पत्नी के साथ महार व मांग जाति की लड़कियो के लिए स्कूल खोलना चाहते थे। इस बात से नाराज़ हो कर उनके पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया था।

जोतिबा फूले ने नीची मानी गई जातियो के जीवन की समस्याओं को गहराई से देखा और उन पर कई नाटक, पुस्तकें आदि तैयार की। उन्होंने दिखाया कि गांव के ब्राह्मण चोरी छिपे माली और कुन्बी लोगों को कहते हैं कि वे अपने बच्चो को स्कूल नही भेजे, नही तो पटेल उनके साथ बुरा बर्ताव करेगा।

बहुत से ब्राह्मण शिक्षक स्कूल में शूद्र मानी जाने वाली जातियों के छात्रों को पीटते हैं, ताकि वे स्कूल

से भाग जाए और दुबारा कभी स्कूल न आएं।

गरीब लोगों को खामखाह ब्राह्मण पुजारियों की वजह से अनापशनाप खर्च करना पड़ता है।

सभी सरकारी दफ्तरों में, नगर पालिकाओ में, छोटे-बड़े अधिकारी ब्राह्मण हैं। वे दूसरी जाति के गरीब किसानों को तरह तरह से तंग करते हैं।

जोतिबा फूले ने सत्यशोधक समाज नाम का संगठन बनाया। समाज ने मुख्य रूप से ये काम उठाए :

० नीची मानी गई जातियों के बच्चों के लिए अलग स्कूल, कॉलेज व छात्रावास की मांग व व्यवस्था करना जिनमें नीची मानी गई जातियों से ही शिक्षक निरीक्षक नियुक्त हों ताकि इन जातियों के बच्चे शिक्षित होकर समाज में ऊपर उठ सकें।

० नीची मानी गई जातियों के छात्रों के बीच लेख, वाद विवाद, भाषण प्रतियोगिताएं करवाना ताकि उनकी झिझक टूटे और वे अन्य ऊंची मानी गई जाति के लोगों की तरह अपनी बातें ज़ोरदार ढंग से सब के सामने रख पाएं।

० नीची मानी गई जातियों को इस बात का बढ़ावा व मदद देना कि वे अपने सब धार्मिक संस्कार ब्राह्मणों के बगैर पूरे करे - लोग स्वयं धर्म के संस्कार कर लें या चाहें तो अपनी ही जाति का पुजारी रखें और इसे ही दक्षिणा दें।

यह अभियान काफी सफल भी रहा। जैसे, 1884

ब्राह्मणों की दान दक्षिणा पर खर्च

में एक अखबार ने खबर छापी की जुन्नार के 40 गांवों के शूद्रों ने 300 विवाह संस्कार ब्राह्मणों के बगैर संपन्न कर लिए हैं। 1873 की एक खबर में छपा कि पुणे का 700 माली, कुन्बी, कुम्हार, बंढ़ई व अन्य जातियों ने ब्राह्मणों से स्वतंत्र होने को अभियान छेड़ा हुआ है और वे अपने पूर्वजों के श्राद्ध संस्कार ब्राह्मणों के बिना ही पूरे कर रहे हैं।

इस तरह के विरोध से तंग आ कर कुछ ब्राह्मण पुजारी तो दक्षिणा लेने के हक का दावा करने के लिए कोर्ट कचहरी तक जा पहुंचे, पर वहां मुकदमे हार गए।

इन आंदोलनों के कारण नीची मानी गई जातियों के विकास और उनके हक व अधिकार की बात जोरदार ढंग से सामने आ पाई। आगे चल कर डा. अंबेडकर जैसे नेता भी इन जातियों पर हो रहे अन्याय को दूर करने के लिए लड़े।

स्वतंत्रता के बाद

समाज सुधारकों की कोशिशों से हमारे समाज मे बहुत से बदलाव आए, पर यह नही कहा जा सकता कि समाज सुधार पूरी तरह सफल हुए। तुम अपने आसपास आज भी बहुत सी बातें देखते हो जो अंग्रेज़ों के समय से सुधारवादी लोग बदलना चाह रहे थे। **और आज भी लोग किसी न किसी तरह समाज में सुधार लाने की कोशिश कर रहे हैं।**

तुम आजकल इन बातो को लेकर सुधार की क्या कोशिशें देखते हो - महिलाओं की स्थिति, जातपात का विरोध, धार्मिक कर्मकांड का विरोध?

अंग्रेज़ो के समय से चले आंदोलन के कारण स्वतंत्र भारत के संविधान में महिलाओं और पुरुषों को बराबर के अधिकार दिए गए हैं। सब जाति व धर्म के लोगों

को समान माना गया है। नीची मानी गई जातियों पर हुए अन्यायों को दूर करने के लिए उनके हक में कई विशेष व्यवस्थाएं की गई हैं - जैसे आरक्षण की व्यवस्था।

संविधान और कानूनों में इन बातों को मानना एक बात है और असलियत में इन्हें लागू करना दूसरी बात है। समानता और न्याय की बातों को असलियत में उतारने के लिए आज भी लोग जूझ रहे हैं।

अभ्यास के प्रश्न

1. भारत में किस तरह के लोग चाहते थे कि भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा फैले? वे ऐसा क्यों चाहते थे?
2. राजा राममोहन राय सरकार द्वारा संस्कृत पाठशाला खोले जाने के खिलाफ क्यों थे?
3. अंग्रेज़ सरकार भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा क्यों फैलाना चाहती थी?
4. अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों पर शिक्षा का क्या असर पड़ा - तुम अपने शब्दों में दो-चार वाक्य लिखो।
5. परमहंस मंडली के सदस्य ऐसे क्या सुधार करना चाहते थे कि उनका कड़ा विरोध हुआ?
6. जिस स्त्री का पति मर जाता था, उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाता था? राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और रमाबाई जैसे सुधारकों ने ऐसी स्त्रियों की मदद में क्या किया?
7. महिलाओं की हालत सुधारने के लिए उन्हें शिक्षित करना क्यों ज़रूरी है - तुम अपने विचार लिखो।
8. पंडिता रमाबाई ने 'शारदा सदन' की स्थापना क्यों की? वहां क्या सिखाया जाता था?
9. स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार वैदिक काल में क्या-क्या कुरीतियां नही थी जो बाद में आयी?
10. दयानंद एंग्लो वेदिक कॉलेज मे क्या-क्या पढ़ाया जाता था?
11. मुसलमानो मे अंग्रेज़ी शिक्षा फैलाने के लिए क्या कदम उठाये गये?
12. जोतिबा फुले और सत्यशोधक समाज के लोगों नीची मानी जाने वाली जोतियों के उद्धार के लिए क्या-क्या कदम उठाये?

8

अंग्रेज़ी शासन और भारत के किसान

"लगान नहीं चुकायी तो ज़मीन की नीलामी"

मुग़ल बादशाहों की तरह अंग्रेज़ भी किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूल करना चाहते थे। मुग़लों के समय में अगर कोई किसान लगान नहीं चुका पाया तो उसके नाम पर बकाया लिखा जाता और आने वाले वर्षों में ज़ोर-ज़बरदस्ती से वसूल किया जाता था। मगर अंग्रेज़ों ने लगान लेने के लिए एक दूसरी व्यवस्था की।

अगर मान लो कोई किसान या ज़मींदार अपना लगान पूरी तरह से समय पर चुका नहीं पाया तो अंग्रेज़ सरकार उसकी ज़मीन को नीलाम कर देती थी। नीलाम ज़मीन को और कोई खरीद लेता और उस पैसे से सरकार लगान वसूल कर लेती।

खेती-किसानी पर समय-समय पर कई मुश्किलें आ जाती हैं। बाढ़ या सूखे से फसल नष्ट हो जाती है। कभी बाज़ार में फसल के भाव बहुत गिर जाते हैं तो किसानों को फसल बेचकर बहुत कम पैसे मिल पाते हैं। ऐसी मुश्किलों में किसानों को ऊंची लगान के पैसे भरना बहुत अखरता था। पर अंग्रेज़ सरकार आमतौर पर लगान माफ करने को तैयार नहीं होती थी। यहां तक कि समय की मोहलत भी नहीं देती थी। अगर किसान तय किए समय तक लगान न भरे तो कचहरी से उसकी ज़मीन की नीलामी का नोटिस निकल जाता था। ज़मीन नीलाम होकर किसान के हाथ से छिन जाती थी।

अंग्रेज़ों के नये नियमों से किसानों को जूझना पड़ा

अंग्रेज़ों के शासन में सैकड़ों किसानों व ज़मींदारों की ज़मीन नीलाम होने लगी। नीलामी से बचने के लिए वे सेठ, साहूकारों से बड़ी मात्रा में कर्ज़ा लेने लगे। कर्ज़ा न चुका पाये तो साहूकार भी ज़मीन की नीलामी करवा देते थे और फिर उस ज़मीन को खुद ज़ब्त कर लेते थे।

इस स्थिति में किसानों पर क्या गुज़री थी, आओ कुछ उदाहरणों से समझें।

अंग्रेज़ सरकार के लगान वसूल करने के तरीके की दो मुख्य बातें क्या थीं?

1875 में साहूकारों के खिलाफ मराठा किसानों का विद्रोह

1875 में महाराष्ट्र के पुणे व अहमदनगर जिलों के किसान अपने गांवों के साहूकारों के खिलाफ बुरी तरह भड़क गए। गांव-गांव में किसान साहूकारों के घरों को घेर कर उनके बहीखातों की मांग करने लगे। मना करने पर वे साहूकार का घर जला देते। गांव के सब लोगों ने उनका साथ दिया और साहूकारों का नाई, धोबी बंद करवा दिया। कई साहूकार गांव छोड़ कर भाग लिए।

इस तरह भड़कने के पीछे क्या कारण था? एक मराठा किसान कुछ इस प्रकार बताता - "जब देखो तब ये साहूकार कचहरी से कुर्की (नीलामी का नोटिस) ले आते हैं। हम कर्ज़ा नही चुका पाये तो हमारी घर-ज़मीन सब नीलाम करा देते हैं। पुश्तों से ये लोग हमें अपना कर्ज़दार बनाए रखे हैं। जितना भी पैसा दो, कर्ज़ा चुकता ही नहीं। ये अपने बहीखातों में हमारे नाम झूठा कर्ज़ा चढ़ाए रखते हैं। इनके बहीखाते जलकर राख हो जायें तभी हमारी आफत टलेगी।"

किसानों का कर्ज़ा बढ़ने का एक कारण लगान वसूली का नया नियम था। पर एक दूसरे कारण से भी किसानो पर कर्ज़ा लदता जा रहा था। यह था फसलों का विदेशी व्यापार। 1875 में मराठा किसानों का साहूकारों के खिलाफ जो विद्रोह हुआ, उसके पीछे भी विदेशी व्यापार का असर था।

विदेशों से व्यापार

दरअसल बात इस तरह थी। 1861 के आसपास कपास की बहुत मांग होने लगी थी और कपास बहुत ऊंचे दामों मे बिकने लगी थी। सब किसानों ने दूसरे अनाज न बो कर कपास उगानी शुरू की। कपास के लिए लागत लगती थी - सो साहूकारों से कर्ज़ा लिया। सन् 1865 के बाद कपास का दाम बहुत गिरने लगा। जो कपास 1864 मे बारह आने प्रति किलो बिक रही थी अब छह आने प्रति किलो बिकने लगी। किसानो का बहुत घाटा हुआ। इस पर से सरकार का लगान भी चुकाना पड़ा। अब किसानो को और कर्ज़ा लेना पड़ा। किसान इधर साहूकारों की जकड़ में फंसते जा रहे थे तो उधर साहूकार मालामाल हो रहे थे।

कपास के दाम बढ़ने-घटने का कारण यह था - इंग्लैंड मे बहुत कपड़ा मिले थीं। उनके लिए कपास संयुक्त राज्य अमेरीका से आती थी। सन् 1861 मे अमेरीका में युद्ध छिड़ गया और वहां से कपास आनी बंद हो गयी। अब इंग्लैंड के मिल मालिक भारत से कपास खरीदने लगे। कपास की मांग बढ़ी और उसके साथ-साथ कीमत भी। कपास का दाम 3 आने किलो से 12 आने हो गया।

लेकिन सन् 1865 में अमेरीका मे युद्ध समाप्त हुआ और वहां से कपास फिर से इंग्लैंड जाने लगी। अब भारत की कपास की मांग गिरने लगी और उसका दाम भी गिरने लगा। ऐसे मे किसानो की आमदनी घटने लगी। लगान चुकाना मुश्किल हो गया। कर्ज़ा बढ़ गया। उन्ही दिनो साहूकारो के खिलाफ मराठा किसानो का विद्रोह भड़का।

कितनी दूर के देशो में हुई घटनाओं से यहां के किसानो को भारी लाभ भी हुआ और फिर नुक्सान भी। कपास ही नही बल्कि भारत से गेहूं, शक्कर, नील, पटसन, चाय आदि चीज़ दूर देशो में बिकने लगी थी।

कपास तोल कर विदेश भेजी जायेगी

वहां किसी भी कारण से दाम बढ़ते या घटते तो यहां के किसानों पर असर पड़ता।

> *मराठा किसानों ने साहूकारों के खिलाफ विद्रोह क्यों किया?*
> *कपास के व्यापार से मराठा किसानों का कर्ज़ा क्यों बढ़ा?*

लगान नहीं चुकाएंगे

मुग़लों के समय में जब लगान का बोझ बहुत बढ़ता था तो किसान गांव छोड़ कर चले जाते थे।

शुरू में अंग्रेज़ों के समय में भी वे लगान के बोझ से बचने का यही तरीका अपनाते रहे। पर, धीरे-धीरे आबादी बढ़ी और खाली ज़मीन की कमी होने लगी।

इस हालत में किसानों के लिए अपनी ज़मीन छोड़ कर जाना संभव नहीं था।

तब मुसीबत के समय में किसान खुल्लम खुल्ला अंग्रेज़ सरकार को लगान देने से इनकार करने लगे। भारत के किसानों ने लगान माफी के लिए कई आंदोलन किए। इनमें 1928 में गुजरात राज्य की बाड़दौली तहसील में हुआ आंदोलन बहुत प्रसिद्ध है।

बाड़दौली का किसान आंदोलन

तीस साल पहले सरकार ने बाड़दौली के किसानों का लगान तय किया था। अब 1926 में सरकार को फिर से तय करना था कि अगले 30 सालों के लिए लगान उतना ही रखना है, या बढ़ाना है तो कितना?

सरकार ने तय किया कि लगान 30 प्रतिशत बढ़ा दिया जाए।

यह बात जान कर बाड़दौली के किसान भड़क उठे। उन्होंने कहा, "लगान में इतनी बढ़ोत्तरी करने का कोई आधार ही नहीं है। सरकार बिना कारण लगान बढ़ा रही है। पूरे मामले की ठीक से छानबीन नहीं की गई है - और यूं ही लगान बढ़ा दी। हम नहीं चुकाएंगे।"

"हां, बिल्कुल नहीं चुकाएंगे। अगर सरकार मानती है तो उतना लगान दे देंगे जितना देते आए हैं। नहीं मानती तो एक धेला भी नहीं देंगे।"

सरकार नहीं मानी और बढ़ा हुआ लगान वसूल करने पर तुली रही।

किसानों ने सरकार के खिलाफ आंदोलन छेड़ने का निर्णय लिया। उन्होंने कांग्रेस पार्टी के वल्लभ भाई पटेल और महात्मा गांधी की सहायता भी ली। उन दिनों कांग्रेस पार्टी बन चुकी थी और देश की स्वतंत्रता के लिए काम करने लगी थी। कांग्रेस के लोग किसानों का साथ देने के लिए बाड़दौली भी आए।

ज़ब्ती और नीलामी

लगान देने से इनकार करने पर सरकार किसानों की फसल, ज़मीन, बर्तन, ज़ेवर, जानवर - कुछ भी ज़ब्त कर लेती थी और उसे बेच कर लगान वसूल करती थी। ज़ब्ती के डर से कई किसान चोरी छिपे लगान चुकाने की कोशिश भी करते थे। अगर कोई किसान लगान देने को राज़ी हो जाता तो बाकी किसान उस के साथ उठना, बैठना, खाना-पीना सब व्यवहार छोड़ देते और इस तरह उस पर इतना दबाव डालते कि वह भी सबकी तरह लगान इनकार करने में शामिल हो जाता।

बाड़दौली के आंदोलनकारी किसानों ने ज़ब्ती से बचने के कई उपाय किए। कई गांव के किसान अपने घर के पीतल के बर्तन, ज़ेवर आदि दूसरी जगह रह रहे रिश्तेदारों के घर छुपा आए। गांव के लड़के पेड़ों पर छुप कर निगरानी रखने लगे। जैसे ही सरकारी आदमी आते दिखते वे बिगुल बजा देते। गांव वालों को खबर

हो जाती। कई गांवो मे ऐसा किया गया कि बिगुल सुनते ही सब लोग अपने गाय, बैल, भैंस खुले छोड़ देते और अपने-अपने घरो पर ताला डाल देते। ऐसे मे सरकारी आदमी पहचान ही नही पाते कि कौन से जानवर किस किसान के हैं! ज़ब्ती करने मे उन्हें बड़ी कठिनाई जाती।

चाहे पुलिस घर तोड़ दे हम लगान नही चुकायेगे

गांव वाले सरकारी आदमियो को खाना-पानी-आराम करने की जगह - कुछ भी नही देते थे। अप्रैल-मई की चिलचिलाती धूप मे अधिकारी परेशान हो कर चले जाते।

यदि कही उन्होने किसानो के जानवर ज़ब्त कर लिए तो किसान रातो रात अपने जानवर छुड़ा लाते। सरकार लगान न चुकाने वाले किसानो की ज़मीन ज़ब्त कर के नीलाम कर देती थी। तो, किसानो ने नीलाम की गई अपनी ज़मीन वापस पाने का रास्ता भी निकाल लिया। अगर गांव का कोई आदमी उनकी ज़मीन खरीदता तो किसान मिल कर उस पर इतना दबाव डालते थे कि वह आदमी ज़मीन लौटाने पर मज़बूर हो जाता था। यदि बाहर के किसी आदमी ने उनकी ज़मीन खरीदी और वहां खेती करने आया तो गांव के लोग मिल कर उसे भगा देते थे।

इस तरह कई किसान ज़ब्ती के नुक्सान से अपने को बचा कर सरकार का विरोध कर पाए। फिर भी बहुत से किसानो को काफी नुक्सान सहना पड़ा। पुलिस के दल और लगान अधिकारी उनके घरो के ताले तोड़ कर अंदर घुस जाते थे, तोड़-फोड़ करते थे और बर्तन, बिस्तर, सामान ज़ब्त कर के ले जाते थे। ज़ब्त किया हुआ सामान और ज़मीन निश्चित वापस मिल जाएगी ऐसा भी कोई भरोसा नही था। बहुत से किसानो को वाकई मे अपनी नीलाम ज़मीन वापस नही मिली। फिर भी बहुत हिम्मत और साहस के साथ किसानो ने लगान देने से इनकार किया और खुल्लम खुल्ला सरकार का सामना किया। वे पुलिस, फौज, जेल, थाने, किसी बात से नहीं डरे।

वे कहते थे, "फौज आई तो क्या लगान ले लेगी? क्या गोरा हमारी ज़मीन को जहाज़ में लाद के विलायत ले जाएगा? ले जाए ले जा सके तो। देखें तो सही!"

किसानो के आंदोलन को पढ़े-लिखे लोगो, मिल मज़दूरो आदि अनेक लोगो का समर्थन मिला। आखिर सरकार को झुकना पड़ा और लगान मे सिर्फ 6 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गई। बाड़दौली आंदोलन को देखते हुए सरकार ने दूसरी ज़गहो पर भी लगान बढ़ाने की अपनी योजना छोड़ दी। बाड़दौली के किसानों ने अंग्रेज़ सरकार को झुका दिया। इस बात से देश मे खुशी और उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। गांधीजी ने कहा कि बाड़दौली जैसे आंदोलनो से देश को स्वतंत्र करने मे सफलता मिलगी।

बाड़दौली के किसानों ने लगान देने से क्यों मना किया?
बाड़दौली के आंदोलनकारी किसानों को क्या नुक्सान उठाना पड़ा?
किसानों ने ज़ब्ती के नुक्सान से बचने की क्या कोशिशें कीं?

ज़मींदार और किसान

"ज़मीन का मालिक कौन"

शुरू में अंग्रेज़ शासकों को एक सवाल बहुत परेशान करता था। वो सोचते, "भारत में लगान किस से वसूल करें? जो भी हो, सरकार सीधे उसी आदमी से लगान लेगी जो ज़मीन का असली मालिक है और अपनी ज़मीन पर खेती करता या करवाता है।"

तुम सोचोगे कि इसमें दिक्कत क्या थी? अगर तुम भोगपतियों और मुग़ल काल के गांवों की बातें याद करो तो तुम्हें दिक्कत समझ में आएगी। तुम जानते हो कि ज़मीदार किसानों से लगान इकट्ठा करते थे और सरकार को चुकाते थे।

पर क्या वे किसी भी किसान को ज़मीन से हटा सकते थे?
क्या वे किसान से उसकी ज़मीन पर बटाई वसूल कर सकते थे?
क्या वे किसान की ज़मीन के मालिक थे?

तुम जानते हो कि मुग़लो के समय तक ज़मीन का मालिक तो किसान ही था। पर अंग्रेज़ों को कई बार ऐसा लगा कि ज़मीदार सरकार को लगान देते हैं इसलिए शायद वे ही ज़मीन के मालिक हैं। अंग्रेज़ अधिकारियों को यह भी लगा कि ज़मीदार ताकतवर लोग हैं। अगर उनका साथ मिले तो भारत में अंग्रेज़ शासन मजबूत होगा। वे यह भी समझ रहे थे कि सैकड़ों-लाखों अलग-अलग किसानों से लगान इकट्ठी करना बड़ा मुश्किल काम होगा।

यह सब सोच कर अंग्रेज़ों ने तय किया कि वे ज़मींदारों को ही ज़मीन का मालिक मानेंगे और उन्हीं से लगान वसूल करेंगे। यह व्यवस्था बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में विशेष रूप से लागू हुई।

अरे यह क्या हुआ? लगान तो मुग़लों के समय में भी ज़मीदारों से ही ली जाती थी, पर उन्हें ज़मीन का मालिक मानना क्यों ज़रूरी था? अगर हम किसी अंग्रेज़ अधिकारी से यह पूछते तो वह शायद यह जवाब देता, "हमारा नियम है कि कोई व्यक्ति समय पर पूरा लगान नहीं चुकाए तो हम उसकी ज़मीन नीलाम कर के लगान वसूल करते हैं। अगर हम ज़मींदार को ज़मीन का मालिक नहीं मानें तो लगान न चुकाने पर किसकी ज़मीन नीलाम करेंगे? जितनी ज़मीन पर लगान देना उसकी ज़िम्मेदारी है, उतनी ज़मीन का मालिक वो ज़मींदार नहीं होगा तो और कौन होगा?"

इस तरह अंग्रेज़ शासन के नए नियम कानून लागू हुए और ज़मींदार ज़मीन के मालिक बनाए गए। अब किसान ज़मीदारों के बटाईदार बन के रह गए। किसानों का अपनी ही ज़मीन पर अब कोई हक नहीं रहा।

अंग्रेजों की सोच के अनुसार जो ज़मीन का लगान चुकाता है वो ज़मीन का क्या होता है?
अंग्रेज़ों की यह सोच मुग़लों के समय की व्यवस्था से कैसे फर्क थी?
तुम्हारे विचार में ज़मींदार को ज़मीन का मालिक मानने से ज़मींदारों और किसानों पर क्या असर पड़ा होगा?

किसान की ज़मीन और ज़मींदार का हक

ज़मींदारों ने ज़मीन के मालिक होने के नाते अपने नए अधिकारों का खूब फायदा उठाया। उन दिनों भारत
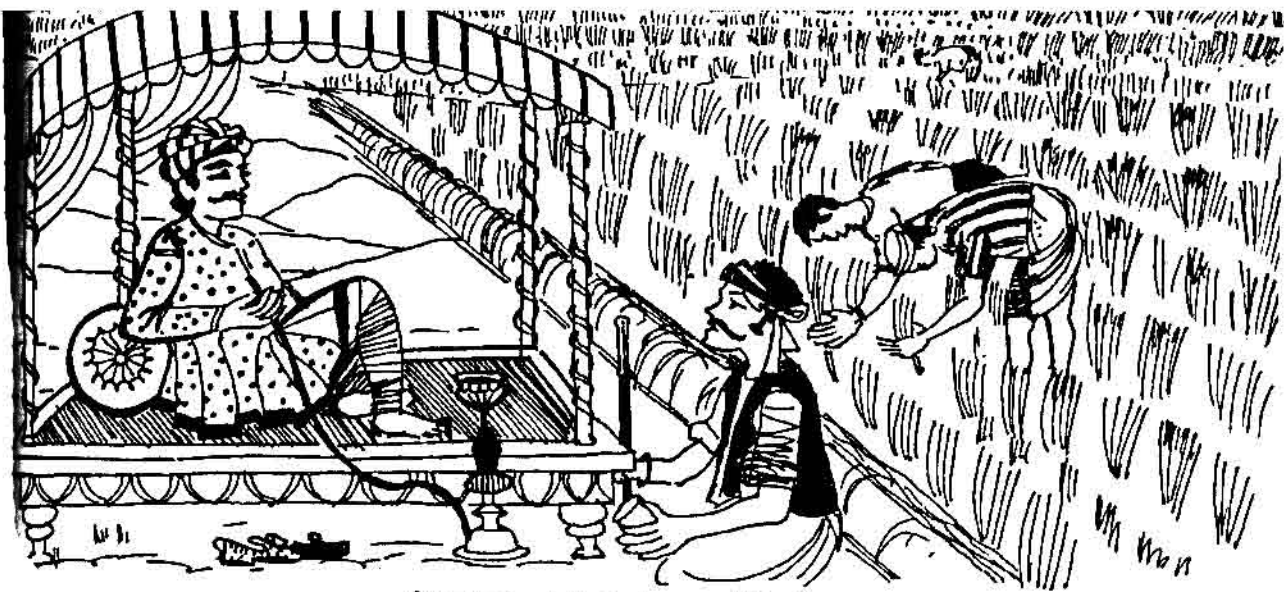
किसान ज़मींदारों के बटाईदार बना दिये गये

में आबादी भी बढ़ रही थी और ज़मीन की कमी महसूस होने लगी थी। अब परेशान किसान गांव छोड़ कर कहीं जा भी नही सकते थे क्योंकि किसानी के लिए ज़मीन कहां से मिलती? किसानों की मज़बूरी का भी ज़मीदारों ने खूब फायदा उठाया। आओ, देखें कैसे।

अवध का रहने वाला एक गरीब किसान गयादीन था। वह अपनी गाय बेचने जा रहा था।

क्यों?

गयादीन कहता : "ज़मींदार हर साल ज़्यादा बटाई मांग रहा है। हर साल बटाई का हिस्सा बढ़ा देता है। मैं कैसे चुकाऊं? मैं नही चुका पाया इसलिए ज़मींदार ने कचहरी में केस कर दिया। मुझे गाय बेच कर ज़मीदार को पैसे चुकाने हैं।"

पैसे चुकाने पर ज़मींदार ने गयादीन को उसकी ज़मीन जोतने दी। पर एक साल बाद गयादीन अपनी 10 साल की बेटी की शादी एक बूढ़े आदमी से कर रहा था।

क्यों?

गयादीन बताता : "ज़मींदार कहता है कि इस साल ज़मीन तभी जोतने दूंगा जब पांच सौ रुपए का नज़राना दोगे। नज़राना नही दे सकते तो ज़मीन से बेदखल कर दूंगा। मैं क्या करूं? इस बूढ़े से मुझे बेटी के पांच सौ रुपए मिले हैं। ये रुपए ज़मीदार को दूंगा और खेत जोतूंगा। नही तो खाऊंगा क्या?"

गयादीन की ज़मीन पर ज़मींदार बटाई वसूल कर रहा था। गयादीन उसे मना क्यों नहीं कर सका? ज़मींदार ने गयादीन से किस बात का नज़राना वसूल किया?

गयादीन जैसे लाखों किसानों की हालत दयनीय हो गई थी। जिस ज़मीन के वे मालिक थे उस ज़मीन को जोतने भर के लिए उन्हें अपनी गाढ़ी कमाई में से ज़मीदारों की जेबें गरम करनी पड़ती थी। ऐसा नही था कि ज़मीदार उनसे सिर्फ उतनी लगान लेते थे जितनी सरकार को चुकानी थी। सरकारी लगान से काफी ज़्यादा रकम वे किसानों से वसूल करने लगे थे। किसान को इसकी रसीद देने का तो सवाल ही नही था।

यह अतिरिक्त रकम ज़मींदार अपनी बटाई का हिस्सा मानते थे और मालिक होने के नाते वे यह अधिकार महसूस करने लगे थे कि जब चाहें बटाई की दर

बढ़ाए, जिसे चाहें ज़मीन जोतने को दें, जिसे चाहें ज़मीन से बेदखल कर दें।

ज़मींदार की ज़मीन और किसान की सेवा

किसानो की ज़मीन के तो वे मालिक बन ही गए थे पर ज़मीदारो की अपनी खुद की ज़मीनें भी थी। इन्हें खुदकाश्त या सीर की ज़मीन कहा जाता था। अपनी खुदकाश्त ज़मीनों को वे मज़दूर लगा के या बटाई पर दे के जुतवाते थे। पर वे अक्सर इसी कोशिश में रहते थे कि अपनी ज़मीन पर भी मज़दूरी और बटाई देने का नुक्सान न उठाना पड़े। "क्यों न अपनी ज़मींदारी में आने वाले किसानों से अपनी खुदकाश्त ज़मीन भी जुतवाई जाए?" यह विचार ज़मींदारों के मन में आते देर न लगी और किसानों को ज़मींदार की ज़मीन पर बेगार काम करने के लिए मज़बूर होना पड़ा। अगर कोई मना कर दे तो ज़मींदार के सिपाही पीट पीट के उसे बेगार करवाने ले जाते। ज़मींदारों का ऐसा दबदबा था कि वे अपने सिपाहियों से रास्ते चलते किसी भी किसान को पकड़वा के बुला लेते और अपने खेतों पर काम करवा लेते। ज़मींदार के खेतों में बेगार करने के कारण किसान अपनी ज़मीन पर ठीक से खेती भी नही कर पाते थे।

ज़मींदारी के बोझ के कारण किसान अपनी ज़मीन पर खेती सुधारने का उत्साह भी जुटा नही पाते थे। 1878 में एक सरकारी रपट में लिखा था कि किसान अपनी ज़मीन पर न कुंआ खोदने और सिंचाई करने की कोशिश करते हैं, न मेढ़ें बनाने या नाली निकालने और खाद डालने की कोशिश करते हैं, क्योंकि उनके सिर पर ज़मीन से बेदखल किए जाने का डर हमेशा मंडराता रहता है। अगर वे खेती सुधारें तो ज़मींदार झट बटाई बढ़ा देगा। ज़मींदार भी किसान को सुधार करने से रोकते हैं क्योंकि उन्हें यह डर रहता है कि किसान उस ज़मीन पर अपना हक जताने लगेंगे।

खुदकाश्त ज़मीन किसे कहते थे?
किसानों को किस काम के लिए बेगार करना पड़ता था?
किसान की ज़मीन पर खेती सुधारने की बात किसान और ज़मींदार दोनों ही क्यों नहीं चाहते थे?

अनगिनत वसूलियां

ज़मीन को लेकर ये सारी समस्याएं तो एक तरफ थी ही। पर ज़मींदार बात-बात पर किसानों से पैसे भी वसूल करते थे। कमिशनर साहब का दौरा हुआ तो किसानों से 'कमिशनरावन' नाम का चंदा ज़बरदस्ती वसूल किया जाता था। इसी तरह ज़मींदार के हाथियों के लिए 'हाथियावन' चंदा, ज़मींदार मोटर खरीद रहे हैं तो 'मोटरावन' चंदा, घोड़े खरीद रहे हैं तो 'घोड़ावन' चंदा। किसानों से अनगिनत ऐसे चंदे वसूल किए जाते थे। यहां तक कि एक बार एक ठकुराइन का फोड़ा पक गया तो उन्होंने झाड़ फूंक और इलाज में काफी पैसा खर्च किया। यह पैसा भी उनके किसानों से "पकावन" चंदे के रूप में वसूल किया गया। इनके अलावा किसानों को नियमित रूप से ज़मींदार के घर पर मुफ्त घी, दूध, सब्ज़ी, गुड़, भूसा, गोबर के उपले जैसी कई चीज़ें तो देनी ही पड़ती थी।

ऐसी स्थिति भारत के कई प्रांतो में हो गयी थी। बंगाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश में बड़े-बड़े ज़मींदार थे। हरेक ज़मींदार दर्ज़नों व सैंकड़ों गांव के मालिक थे। इन ज़मींदारों की ज़्यादतियों के खिलाफ किसान बराबर विरोध करते रहे।

अवध के किसानों का विद्रोह

उदाहरण के लिए : सन् 1920-22 में उत्तर प्रदेश में अवध के किसानों ने बड़े-बड़े जुलूस निकाले और ज़मींदारों की वसूलियों का विरोध किया। कई

अत्याचारी ज़मीदारों का नाई-धोबी बंद किया और उन्हें गांव से भगा दिया। ज़मीन से बटाईदारों को हटाने व बटाई बढ़ाने की कोशिश करने वाले ज़मीदारो की ज़मीन जोतने से इनकार किया।

किसानो ने अपनी "किसान सभाएं" भी बनाईं ताकि अपने संघर्ष को आगे बढ़ा सकें। बाबा राम चन्द्र, झिंगूरी सिंह, सूरज प्रसाद, मदारी पासी उत्तर प्रदेश के किसानों के मशहूर नेता हुए। अंग्रेज़ सरकार ने आंदोलन को कुचलने में ज़मीदारों की पूरी सहायता की। फिर भी किसानो के प्रभावशाली आंदोलन को देखते हुए अंग्रेज़ सरकार को बटाईदारो के हित में कानून बनाने पड़े।

आंध्र प्रदेश में तेलंगाना आंदोलन 1946-50

1946-47 की बात है। आंध्र प्रदेश के तेलंगाना प्रांत में एक गांव था बिश्नुपुर। बिश्नुपुर के ज़मीदार के पास 40,000 एकड़ ज़मीन थी। उसने एक ग़रीब धोबन की ज़मीन को हथियाने की कोशिश की। इसके ख़िलाफ किसानो का विद्रोह शुरू हुआ। कुछ ही दिनों में यह आंदोलन चारों ओर फैल गया। इस आंदोलन का नेतृत्व कम्यूनिस्ट पार्टी ने किया। किसानों ने बंदूकें ख़रीदकर अपनी सेना बनाई और लगभग 3,000 गांवों से अधिकारियों व ज़मीदारों को भगाकर उनकी ज़मीन हथिया ली और किसानों व मज़दूरों में बांट दी। किसानो ने गांव में अपना शासन शुरू कर दिया। इन गांवो में बेगार बंद हुई, मज़दूरो की मज़दूरी बढ़ाई गई, जिस ज़मीन से किसानों को निकाला गया था, वह उन्हें लौटाई गई। यह नियम बना कि किसी को 100 एकड़ से अधिक असिंचित या 10 एकड़ से अधिक सिंचित ज़मीन रखने का अधिकार नही हैं। अगर इससे अधिक किसी के पास ज़मीन थी तो उसे गरीब किसानो के बीच बांटा गया।

ज़मीदारों से लड़ने की तैयारी करती तेलंगाना की औरते

इस बीच 1947 में भारत आज़ाद हुआ। आज़ादी के बाद भारत सरकार ने किसानों से वादा किया कि वह उनके हित में कानून बनाएगी, अतः किसान अपना आंदोलन बंद कर दें। पुलिस के सहारे आंदोलन दबाया भी गया।

> *अवध के किसान क्या चाहते थे?*
> *तेलंगाना के किसानों ने अपने शासन में किसानों के हित में क्या-क्या कदम उठाए?*
> *ताकतवर होते हुए भी अवध और तेलंगाना के ज़मींदार किसानों के सामने कमज़ोर कैसे पड़ गए?*

स्वतंत्रता के बाद कानून और किसान

अंग्रेज़ो के समय हुए किसान आंदोलनों के कारण किसानों की समस्याएं, उनकी मांगे और उनकी आशाएं उभर कर आईं। यह स्पष्ट था कि किसान चाहते हैं कि सरकारी लगान कम हो, साहूकारो के चंगुल से राहत मिले और ज़मीदारो का दबदबा खत्म हो। यह मांग भी उठने लगी थी कि ज़मीन जोतने वाले की अपनी होनी चाहिए।

स्वतंत्रता के बाद किसानो से ली जाने वाली लगान बहुत कम की गई। किसानों की कर्ज़े की ज़रूरत पूरी करने के लिए सरकारी बैंक खोले गए। पर सबसे बड़ी बात यह हुई कि ज़मीदारी प्रथा खत्म की गई।

ज़मीदारी प्रथा को खत्म करने का कानून 1950 में बना। यह तय हुआ कि हरेक किसान से सरकार

सीधे लगान वसूल करेगी। ज़मींदारों के ज़रिए लगान वसूली नही होगी।

यह भी तय किया गया कि ज़मींदार सिर्फ अपनी खुद की ज़मीन के मालिक रहेंगे। किसानों की ज़मीन का मालिक होने का हक अब उन्हें नहीं होगा। किसानों को उनकी अपनी ज़मीन का मालिक बनाया जाएगा।

पर ज़मींदारों को यह बात कैसे भा सकती थी? उन्होंने दावा किया कि किसानों की ज़मीन से उनका "हक" छीनने के बदले में उन्हें मुआवज़ा मिलना चाहिए।

> *क्या तुम्हें ज़मींदारों की यह मांग उचित और न्यायपूर्ण लगती है?*

उस समय सरकार ने तय किया कि ज़मींदारों को मुआवज़ा दिया जाएगा। मुआवज़ा दे कर सरकार ने ज़मींदारों से किसानों की ज़मीन ले ली ताकि किसानों को उनकी ज़मीन दी जा सके। पर ज़मींदारों को मुआवज़ा देने में सरकार को काफी पैसा खर्च करना पड़ा था। इसलिए यह नियम बनाया गया कि किसानों को उनकी ज़मीन का मालिक तभी बनाया जाएगा जब वे अपनी ज़मीन की कुछ कीमत चुकाएंगे। यह बात बहुत लोगों को ठीक नही लगी। क्योंकि जो किसान कीमत चुका पाए वे अपनी ज़मीन के मालिक बने और उनके सिर से ज़मींदारी का बोझ हल्का हुआ। लेकिन लाखों ग़रीब किसान यह कीमत नही चुका पाए और पहले की तरह भूमिहीन बटाईदार और मज़दूर बने रहे और बड़े किसानों व ज़मींदारों के खेतों पर काम करते रहे।

यह ज़रूर है कि स्वतंत्रता के बाद बटाईदारों के हितों की रक्षा के लिए भी कानून बने ताकि उनसे अनुचित बटाई नही ली जाए, और उन्हें बिना कारण ज़मीन से नही हटाया जाए। मज़दूरों के हित में भी कुछ कानून बने। पर बड़े किसानों ने इन कानूनों से बचने के कई उपाय भी ढूंढ लिए।

> *तुम्हारे इलाके में बटाईदारों और खेतिहर मज़दूरों के हित में क्या कानून लागू हुए हैं?*

आज स्थिति यह है कि भारत में सभी जोतने वाले ज़मीन के मालिक नही हैं। काश्त करने वालों को ज़मीन का हक दिलवाने के लिए स्वतंत्रता के बाद भी आंदोलन हो रहे हैं।

> *तुम अपने बड़े बूढ़ों से पता करो कि तुम्हारा गांव किस की ज़मींदारी या मालगुज़ारी में आता था? मालगुज़ार का तुम्हारे गांव के किसानों से कैसा रिश्ता था?*
>
> *ज़मींदारी/मालगुज़ारी खत्म होने का कानून बनने के बाद तुम्हारे इलाके में क्या बदलाव आए हैं? तुम्हारे गांव में कितने भूमिहीन किसान व खेतिहर मज़दूर हैं? उनके पास ज़मीन क्यों नहीं है?*

अभ्यास के प्रश्न

1. मुग़ल काल के किसानों और अंग्रेज़ों के समय के किसानों की स्थिति में तुम्हें क्या फर्क नज़र आते हैं?
2. क) अमेरीका में 1861 से 1865 तक हुए युद्ध ने मराठा किसानों पर क्या असर डाला - समझाओ।
   ख) क्या आजकल भी फसल के दाम बहुत ज़्यादा गिर जाने से किसान चौपट हो जाता है? समझाओ।
3. अंग्रेज़ों के समय में आबादी बढ़ने से किसानों पर क्या असर पड़ा?
   क्या यह असर आज भी देखा जा सकता है?
4. क) तुमने किसानों को साहूकार, सरकार, ज़मींदार के खिलाफ विरोध करने के क्या-क्या तरीके अपनाते देखा?
   ख) आजकल किसान अपने हितों के लिए कैसे लड़ते हैं?

9 अंग्रेज़ों के शासन में जंगल और आदिवासी

अंग्रेज़ों के समय में जंगल के उपयोग में बदलाव

अंग्रेज़ों से पहले जंगल का उपयोग

जंगल में रहने वाले आदिवासी और जंगल के पास रहने वाले गांव के लोग जंगल का उपयोग करते आए थे। एक तरह से वे ही जंगल के मालिक थे। वे वहां शिकार करते थे, कंद, फल-फूल, जड़ी-बूटियां बटोरते थे, अपने ढोर चराते थे। कहीं कहीं लोग जंगल जलाकर खेती भी करते थे। वे अपने घर और दूसरी चीज़े बनाने के लिए जंगल से लकड़ी काट लाते थे। मगर यह सब अपने घर के उपयोग के लिए करते थे - व्यापार करने या बेचकर मुनाफा कमाने के लिए नहीं। वे जंगल की थोड़ी बहुत चीज़ें बेचते भी थे तो दूसरी ज़रूरत की चीज़ें (नमक, लोहा) खरीदने के लिए ही बेचते थे।

जो किसान और आदिवासी जंगल का उपयोग करते थे, वे उसकी रक्षा भी करते थे। पेड़ काटते भी तो पुराने ही पेड़ काटते थे और नए पेड़ों को बढ़ने देते थे। एक साथ सारा जंगल अंधाधुंध नहीं काटते, थोड़े थोड़े हिस्से ही काटते ताकि जंगल नष्ट न हो।

जंगल से भोजन बटोरते हुए

जंगल में रहने वाले लोग समय समय पर राजाओं व बादशाहों को मूल्यवान भेंट लाकर देते थे (हाथी दांत, खाल, शहद आदि)। जो लोग जंगल में खेती करते थे वे कभी कभी लगान भी देते थे। पर जंगल के उपयोग को लेकर राजा या बादशाह कोई ख़ास नियम कानून नहीं बनाते थे और इस तरह जंगल के लोग स्वतंत्र रूप से उनका उपयोग और देखभाल करते आए थे।

अंग्रेज़ों के समय में जंगल का उपयोग

अंग्रेज़ों के समय में जंगल की लकड़ी का व्यापार बहुत तेज़ी से बढ़ने लगा। उस समय कलकत्ता, बंबई जैसे बड़े बड़े शहर बस रहे थे, मीलों लंबी रेल लाईनें बिछ रही थीं, बड़े बड़े जहाज़ बन रहे थे, और खदानें खुल रही थीं। इन सबके लिए लकड़ी ज़रूरी थी।

रेल लाईन के स्लीपर

सन् 1870 में लगभग आठ हज़ार किलोमीटर लंबी रेल लाईनें बिछाई

गई थी। सन् 1910 तक पचास हज़ार किलोमीटर से भी अधिक रेल लाईनें बिछ चुकी थी। रेल पटरियां बिछाने के लिए हर साल लगभग एक करोड़ लकड़ी के स्लीपर लगते थे। स्लीपर की लकड़ी सप्लाई करने के लिए हिमालय और तराई के जंगल के जंगल काटे गये।

इसके अलावा इमारतो, खदानों और जहाज़ो के लिए भारी मात्रा में जंगल काटकर बेचा जाने लगा। यह काम लकड़ी के व्यापारी और जंगल के ठेकेदार किया करते थे।

अंग्रेज़ सरकार को भी लकड़ी के इस व्यापार से बहुत फायदा होता था। सरकार जंगलो को काटने का ठेका नीलाम करती थी। ठेकेदार से मिले पैसो से सरकार को बहुत आमदनी होने लगी थी।

पहले की तुलना में अंग्रेज़ शासन में जंगल का उपयोग क्यों बदला?

जंगलों को खतरा और नए जंगल लगाने की ज़रूरत

जब ठेकेदार बेतहाशा जंगल काटने लगे तो जंगल तेज़ी से खत्म होने लगे। अब यह खतरा पैदा हो

रेल लाईनों के लिए जंगल की कटाई खूब हुई

गया कि सारे जंगल कटकर खत्म हो जायेंगे। तब जाकर कटे हुए जंगलों की जगह नए पौधे उगाने की ज़रूरत महसूस हुई। आखिर सारे जंगल कट जायेंगे

वन विभाग की पौध और गांव की बकरी

तो रेल, जहाज़ और मकानों के लिए लकड़ी कहां से मिलेगी? आम लोगों के उपयोग के पेड़ (आम, महुआ, नीम आदि) लगाने में सरकार की रुचि नही थी। सरकार चाहती थी कि कटे हुए जंगलो की जगह ऐसे पेड़ लगें जिनकी मांग बाज़ार मे थी (जैसे सागोन, चीड़)।

वन विभाग बना

तेज़ी से खत्म होते हुए जंगलो की समस्या हल करने के लिए अंग्रेज़ सरकार ने 1864 मे वन विभाग बनाया। वन विभाग का काम था वनों की कटाई पर निगरानी रखना और नए जंगल लगाना।

वन विभाग द्वारा नए वृक्षारोपण की सुरक्षा के लिए और पुराने जंगल को खत्म होने से बचाने के लिए ढेरों नियम बनाये गए। इन नियमो का यही नतीजा रहा कि लोगों का जंगलो पर जो अधिकार था वह छिनने लगा। वे अब स्वतंत्र रूप से लकड़ी काटने, ढोर चराने, फल फूल इकट्ठा करने, शिकार करने जंगल मे नही जा सकते थे। इसके कुछ उदाहरण देखो।

अफसर : "हम कटे जंगलों मे नए पौधे लगाते हैं तो गांव वालो के ढोर चर जाते हैं। इन्हें जंगल में आने से रोकना होगा।"

"गांव के लोग गर्मी में जंगल के घास फूस जलाते हैं ताकि बरसात के बाद चराने के लिए घास उग आये। इस आग से बड़े पेड़ तो नही जलते हैं पर वन विभाग द्वारा लगाए गए छोटे पौधे झुलस जाते है। इस तरह घास फूस जलाने पर रोक लगानी चाहिए।"

"ये जो सागोन जैसे कीमती पेड़ हैं, उन्हें ये गांव वाले डालियां और टहनियां तोड़कर खराब कर देते हैं। इसलिए हमें उनके अच्छे दाम नही मिलते हैं। इस तरह टहनियों को तोड़ने से गांव वालों को रोकना होगा।"

इन बातों की वजह से नया वन कानून 1878 में बना। इस कानून के तहत जंगलो को दो भागों में बांटा गया।

1. <u>सरकारी (रिज़र्व) जंगल</u> - जिसमें कोई भी घुस तक नही सकता था।
2. <u>सुरक्षित जंगल</u> - जहां लोग अपने उपयोग के लिए सरगट्टा लकड़ी और छोटी वनोपज ला सकते थे और ढोर चरा सकते थे। लेकिन यहां भी बहुत प्रतिबंध थे। जैसे "पेड़ नही काट सकते", "घास फूस नही जला सकते", "दो दिन से ज़्यादा ढोरों को नही चरा सकते वरना जुर्माना होगा"।

इन सब बातों का लोगों के जीवन पर क्या असर पड़ा - चलो, एक कहानी पढ़ कर जानें। यह कहानी है सुकरू जानी की जो उड़ीसा की पहाड़ियों में बसे देगचा वनग्राम का रहने वाला था।

वन विभाग को नए पौधे लगाना बहुत ज़रूरी क्यों लगा?
वन विभाग को नए पौधों की रक्षा के लिए गांव वालों पर रोक क्यों लगानी पड़ी?
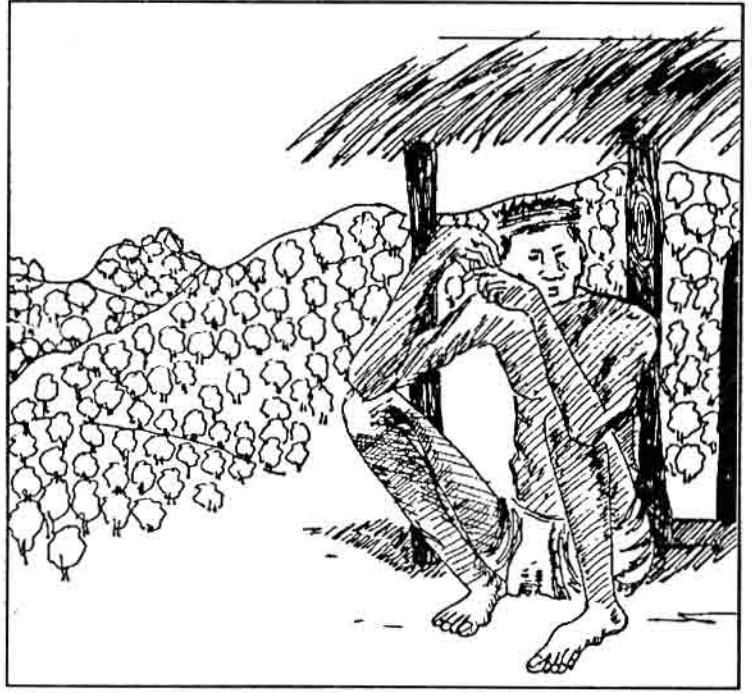
इस साल खेती बढ़ानी है

<u>सुकरू जानी की कहानी</u>

<u>अंग्रेज़ों के शासन से पहले</u>

सांझ ढल रही है। सुकरू जानी अपनी झोपड़ी के अगवाड़े बैठा सामने की पहाड़ी के जंगल में से धूप को खिसकते हुए देख रहा है। पहाड़ी की यही सामने वाली ढलान उसे बहुत मोह रही है। हल्की ढाल है, मिट्टी भी गहरी है।

सुकरू सोच रहा है कि इस साल उसे खेती बढ़ा लेनी चाहिए। दोनों लड़के बड़े हो चुके हैं। उनकी शादी करनी है। लड़की वालो को चुकाने के लिए रकम चाहिए। नही तो शादी कैसे होगी।

सुकरू की आंखें अपने बेटों की ओर उठ जाती है। पहला बेटा माण्डिया कुल्हाड़ी की धार तेज़ करने में मग्न है। टीकरा अपनी डुगडुगी के तारों से बहुत देर से एक धुन निकालने की कोशिश कर रहा है।

बेटो को देख कर सुकरू की आंखो में संतोष और गर्व भर आता है। पान खाते हुए वह सोचता है, "अब टीकरा भी बड़ा हो गया है। इस वर्ष से हम थोड़ा ज़्यादा खेत तैयार कर लेंगे। कल मैं गांव के प्रधान से यह सामने वाली पहाड़ी की बात ज़रूर करूंगा।"

खेतों का बंटवारा

अगले दिन देगचा गांव का प्रधान आने वाले साल के लिए खेत बांटने वाला था। इसलिए उसने सारे गांव वालो को डुमका पहाड़ी पर बुलाया है।

अगले दिन सुबह ही सब लोग डुमका पहाड़ी पर पहुंच गये। प्रधान ने सबसे पूछ-पूछ कर खेती के लिए ज़मीन बांटी।

आसपास की सात-आठ पहाड़ियां और बीच के पठार की ज़मीन देगचा गांव की है। कई सदियो से इन पहाड़ों और इस पठार पर देगचा गांव के लोग जंगल जलाकर खेती करते आये हैं। किसी साल एक पहाड़ी पर खेती की तो किसी साल दूसरी पहाड़ी पर। हर साल किस ज़मीन पर खेती करनी है यह गांव का प्रधान गांव के सयाने लोगो से विचार करके तय करता है। अब डुमका पहाड़ी पर खेती करने की बारी है।

सुकरू डुमका पहाड़ी पर दो बीघा ज़मीन मांगता है और वो उसे मिल जाती है। फिर वह प्रधान से उसके घर के सामने वाली पहाड़ी की हल्की ढाल पर आधा बीघा ज़मीन तोड़ने की बात करता है। लेकिन प्रधान को सुकरू की बात ठीक नही लगती। वह उसे मना करते हुये कहता है, "नही, नही सुकरू। उस पहाड़ी को हम हाथ नही लगायेंगे। आने वाले सालों में तोड़ने के लिए नई ज़मीन बची रहनी चाहिए। तुम डुमका पहाड़ी पर ही एक बीघा और ले लो।"

सुकरू मन मसोसकर रह जाता है। टीकरा पास खड़ा है। तुनक के बोला, "प्रधान ने क्यों मना किया ?" सुकरू ने समझाया, "नही, प्रधान ठीक कह रहा है। चल अपन यही तीन बीघे ज़मीन तोड़कर बोयेंगे। देखें तू कितनी मेहनत कर सकता है - मेरी जितनी या माण्डिया जितनी या हमसे भी ज़्यादा।"

डुमका पहाड़ी पर ज़मीन तोड़ना

सर्दी के दिन अब सचमुच चले गये हैं और हवा में लपट आने लगी है। डुमका पहाड़ी ऊपर से नीचे तक कुल्हाड़ियों की ठक-ठक से गूंज रही है। देगचा गांव के लोग पेड़, झाड़ियां, घास फूस काटने में लगे हैं। इस पहाड़ी पर उन्होंने इक्कीस-बाईस साल पहले खेत बनाये थे। यहां एक दो साल फसल उगाकर दूसरी जगह चले गये थे। तब से अब तक डुमका पहाड़ी पर काफी जंगल उग आया है। अब उसे फिर से काट रहे हैं।

खेत तैयार करने के लिए जंगल काटना

सुकरू, माण्डिया और
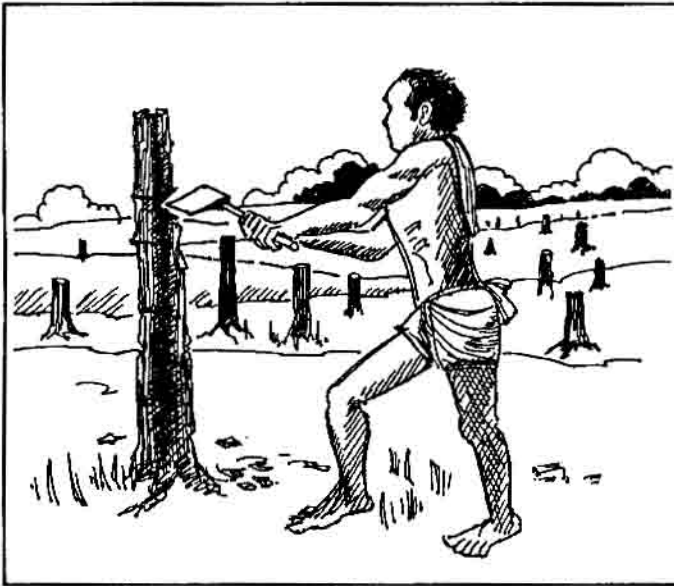
टीकरा भी लगे हुये हैं। टीकरा दो घंटो से लगातार कुल्हाड़ी चला रहा है। उसका गला बुरी तरह सूख रहा है। "क्यो, थक गया?" माण्डिया ने उसे चिढ़ाया।

"नही तो।" टीकरा बोला। "क्यो माण्डिया, वो पहाड़ी का खेत अच्छा था न जहां नीचे ही तोरु नदी बहती है! नदी में सपड़ने में कितना मज़ा आता था!"

माण्डिया बोला, "तू भी क्या सपड़ता था! मैं और बाबा कुल्हाड़ी चलाते थे और तू तोरु नदी में मछली पकड़ता था!"

टीकरा ने कहा "तो क्या! मछली खाने को मिलती तो थी। अब वहां कब खेत बनाएंगे माण्डिया? क्या अगले साल?"

भाईयों की बात सुन सुकरू बीच में बोल पड़ा, "नहीं, अगले साल नही। अभी तीन साल पहले ही तो वहां खेती की है। अभी तो वहां थोड़ी झाड़ियां ही उगी हैं। पेड़ ज़रा ज़रा से हुये हैं। अगर अब वहां काटकर बोयेंगे तो बहुत ही हल्की फसल होगी। वहां खेती करने में तो अब कई साल लगेंगे। तू उतावला मत हो रे टीकरा।

बाप बेटे तीनो डेढ़ महीने तक लगे रहे। जब दूसरों के खेतों मे पेड़ कटाई का काम पूरा हो गया तो उन्होंने कुछ दिन सुकरू के खेत में मदद कर दी। फ़िर भी चलीस-पचास दिन में कही जाकर तीन बीघे ज़मीन पर पेड़ काटे जा सके।

अब कई महीने खेतों मे कुछ काम नही रहेगा। इमका पहाड़ी पर कटे हुये पेड़ पड़े-पड़े सूखेंगे। चारों तरफ के जंगलों के बीच खेती के लिए साफ किया गया यह छोटा सा हिस्सा अलग ही दिखाई पड़ता है। अब बरसात आने के कुछ दिन पहले ही सूखी लकड़ी को जलाया जायेगा और राख पर बीज छिड़के जाएंगे। वे ज़मीन को जोतते या बखरते नहीं हैं। राख में छिड़के बीज बरसात में उगेंगे और बरसात के बाद फसलों की कटाई शुरू होगी।

जंगल में फल बटोरना और शिकार

माण्डिया और टीकरा खुश थे। पेड़ काटने का मेहनती काम अब खत्म हो गया है। वे अब चारो ओर के जंगलो मे जाया करेंगे और खरगोश, हिरण आदि मारकर लाया करेंगे। सभी को शिकार करना बहुत पसन्द है। गांव के सब पुरुष छोटी-छोटी टोलियो मे शिकार करने जायेंगे।

औरतें भी जंगल मे कंद, फल, पत्ते आदि खाने की चीज़ें इक्ट्ठा करने जायेंगी। उनके साथ सुकरू की पत्नी सोबारी और दो बेटियां - जिली और बिली - जायेंगी।

जब तक नई फसल नही आ जाती तब तक इसी तरह जंगल की चीज़ो से गुज़ारा करना होता है। पिछली फसल गर्मी के महीनों तक खत्म होने को होती है। तब जंगल के शिकार और फलो के सिवा दूसरा कोई चारा भी नही रहता।

हाट में जाना है

जिली और बिली भी खुश हैं। जंगल से इमली, चिरौंजी, महुआ और गुल्ली बीनकर वे पास के कस्बे में हाट मे बेचने जायेंगी। हाट से थोड़ा नमक और तेल तो हमेशा लाना होता है। पर इस बार उन्होंने सोच के रखा है कि वे अपने लिए एक एक लाल मनकों की माला ज़रूर लेकर आयेंगी। पर इतनी चीज़े खरीदने के लिए पैसे भी तो हों। "चल बिली," जिली

कहती है, "इस बार जंगल से राम-बुहारी भी काट लायेंगे। दो-चार झाड़ू बनाकर हाट में बेचेंगे।"

<u>हाट में साहूकार</u>

जिली, बिली, माण्डिया और टीकरा - चारों बच्चे हाट जाने को तैयार हो रहे हैं। उधर मां सोबारी सुकरू से बात कर रही है। "घर में कोदो तो पहले ही खत्म हो गया था। अब मक्का भी खत्म हो रहा है। जंगल से चाहे जो ले आओ, पर अनाज तो चाहिये न? अब की बार साहूकार से अनाज लेना ही होगा।"

सोबारी सामान को टोकरी में रखती हुई कहती है, "तुम लोग पहले साहूकार की दुकान पर जाना। ये सारी चिरौंजी, इमली, गुल्ली और राम-बुहारी उसे देकर पहले तीन सेर कोदो ले लेना। फिर नमक और तेल लेना। फिर जो पैसे बचें उस से ही माला खरीदना।"

<u>साहूकार</u>

साहूकार रामचन्द बिसोई कस्बे में रहता है। सख्त ज़रूरत पड़ने पर गांव वाले उसी के पास जाते हैं। उसी से अनाज और पैसे उधार लेते हैं। उसी को अपनी अधिकांश चीज़ें बेचते हैं, चाहे वह कम दाम दे। हर साल फसल कटने के समय साहूकार अपनी बैलगाड़ी लेकर गांव में पहुंच जाता है, उधारी वसूल करने। साहूकार से उधार लेते रहने और चुकाते रहने का यह सिलसिला चलता ही रहता है।

वैसे साहूकार जब शुरू में आया था तब सिर्फ जागीरदार का लगान इकट्ठा करता था। मगर धीरे-धीरे सूद पर उधार देना, चीज़ें खरीदना-बेचना, यह सब भी शुरू कर दिया।

साहूकार ने जिली और बिली से इमली, गुल्ली और चिरौंजी तोल कर ली। इसके बदले में उसने कोदो, तेल और नमक दिया। मगर इसके बाद जिली और बिली के पास पैसे नही बचे कि वे माला खरीद पायें। माण्डिया और टीकरा बाज़ार में अपने दोस्तों के साथ घूम रहे थे। बाज़ार में कही दूर से एक फकीर आया था। वह झूम-झूमकर नाच रहा था और कह रहा था, "अब सब कुछ बदलेगा। अब सब कुछ बदलेगा। नवाबों का शासन खत्म हो गया। अंग्रेज़ बहादुर का राज हो गया। अब सब कुछ बदल जायेगा।" जिली और बिली उस फकीर को देखते रह गये। ऐसा क्या बदलाव आयेगा?

इस कहानी के आधार पर इन प्रश्नों के उत्तर दो।

1. *सुकरू जानी खेती क्यों बढ़ाना चाहता था?*
2. *देगचा गांव की ज़मीन कहां कहां थी?*
3. *गांव के प्रधान ने सुकरू को घर के सामने वाली पहाड़ी पर खेत क्यों नहीं बनाने दिया?*
4. *गांव के लोग कहां ज़मीन तोड़ेंगे और कौन परिवार किस जगह खेत बनाएगा - यह कैसे तय होता था?*
5. *देगचा गांव के लोग जो खेती करते थे और तुम्हारे आसपास के गांवों में जो खेती होती है, उसमें क्या अंतर है?*
6. *तोरू नदी के पास वाली पहाड़ी पर कई वर्षों के बाद ही खेती की जायेगी - इसका सुकरू ने क्या कारण बताया?*
7. *गर्मी और बरसात के दिनों में खाने की कमी क्यों होती थी? तब देगचा गांव के लोग क्या-क्या करते थे?*
8. *साहूकार गांव वालों के लिए क्यों महत्वपूर्ण था? वह लोगों से उधार कैसे वसूल करता था?*
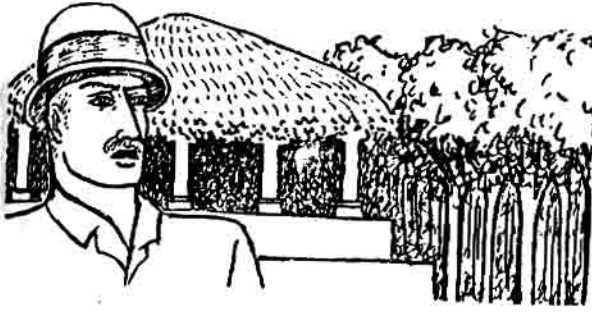
अंग्रेज़ सरकार का ज़माना

देगचा गांव के लोगो को अक्सर हाट बाज़ार में अंग्रज़ों के किस्से कहानी सुनने को मिलते रहे। सब से ज़्यादा चर्चा का विषय बनी रेलगाड़ी। लोगों ने एक गोरे साहब को रेल की पटरियां बिछाने का काम करवाते देखा। फिर जब एक दिन धुंआ छोड़ती छुक छुक करती रेलगाड़ी पटरी पर से गुज़री तो मानो महीनों तक लोगो ने और कोई बात ही नहीं करी। शहर जाने की उत्सुकता अब सबसे ज़्यादा इसीलिए बनी रहती कि शायद रेलगाड़ी देखने को मिल जाए।

इस बीच सुकरू जानी और सोंबारी दोनों गुज़र गए। जिली और बिली की शादियां हो गईं। अब माण्डिया और टीकरा अपने अपने परिवारों के साथ रहते थे। जब भी वे बाज़ार से लौटते तो आपस में बातें करते कि आसपास कितना कुछ बदल रहा है।

"तू ने देखा टीकरा, शहर में कितने नए नए लोग आ कर रहने लगे हैं?" माण्डिया कहता। "हां देखा। पर देखने लायक बात तो यह है कि उस तरफ नीचे मैदान के सारे जंगल साफ होने जा रहे हैं।"

"हां, हां, सो तो दिख रहा है। वहां सब हल बैल से खेती करने वाले लोग आ गए हैं। उनके गांव बस गए हैं।"

दरअसल, सरकार ने ही मैदान की ज़मीन नीलाम करवाई थी ताकि किसान, ज़मीदार आदि यहां आ कर ज़मीन ले, उसे अपने नाम दर्ज़ कराएं, उस पर खेती फैलाएं और सरकार को नियमित लगान दें। पर माण्डिया, टीकरा व उनके साथियों को नीलामी-वीलामी का कुछ पता नही था।

देगचा गांव के लोगों ने शहर और उसके आसपास क्या-क्या बदलाव देखे - सूची बनाओ।

गांव वालों के नाम ज़मीन दर्ज़ हुई

आखिर वो दिन भी आया जब एक गोरा साहब - हाफपैंट और टोप पहने, घोड़े पर चढ़ के - देगचा गांव आया। वह जंगल और खेत देखता रहा, प्रधान

से पूछ-ताछ करता रहा। उसकी खातिरदारी में पूरा गांव जुटा रहा। न जाने किस बात से नाराज़ हो जाए और क्या कर डाले - इस चिंता में लोग मारे मारे फिरते रहे।

गोरा साहब तो उस दिन चला गया। कुछ दिनों बाद हिन्दुस्तानी अधिकारियों का एक दस्ता गांव पधारा। तहसीलदार साहब और रेवेन्यू इंस्पेक्टर साहब साथ में थे। वे सब के खेतों को नाप नाप के अपने खाते में लिखने लगे। माण्डिया के खेत पर पहुंच कर बोले, "तुम्हारा खेत कहां से कहां तक है?"

माण्डिया ने अपना खेत दिखा दिया। उसकी नप्ती कर के इंस्पेक्टर बोला, "ये दो बीघे तुम्हारे नाम से दर्ज़ कर रहा हूं। इसी पर खेती करना। और कही जंगल मत काटना। बाकी जंगल सरकार का है।"

माण्डिया मन ही मन सोचने लगा, "ये क्या कह रहे हैं? अगले साल हम किसी दूसरी पहाड़ी पर जंगल काट कर खेती करेंगे।" पर डर के मारे वह उन से कुछ पूछ नही पाया।

रेवेन्यू इंस्पेक्टर डुमका पहाड़ी पर बने खेत देगचा गांव वालों के नाम दर्ज़ कर के चला गया।

यह जंगल सरकार का है

अगले साल धनुका पहाड़ी पर खेती करने की बारी थी। गांव का प्रधान सब को लेकर वहां गया और खेत बांटे। ठक-ठक-ठक-ठक पेड़ काटने का काम शुरू हो गया।

कई दिन काम चलता रहा। फिर एक दिन अचानक, खाकी वर्दी पहने एक आदमी दौड़ते-दौड़ते पहाड़ी पर चढ़ता दिखा। यह था फॉरेस्ट गार्ड। चिल्ला के बोला, "ऐ रोको। यह क्या कर रहे हो? यह सरकार का जंगल है। यहां पेड़ काटना मना है। काटने वाले को जुर्माना भरना होगा।"

प्रधान उसके पास जा के बोला, "हुजूर! आप यह क्या कह रहे हैं? यह जंगल तो हमारा है। पुर्खो के समय से हम यहां खेती करते आए हैं।"

गार्ड बोला, "तुम लोगों की ज़मीन तो डुमका पहाड़ी पर दर्ज़ है। और यहां का जंगल सरकार ने ले लिया है। यह तुम्हारा नही हैं। चलो, चौकी पर और जुर्माना भरो। हरेक को बीस-बीस रुपए देने होंगे। चलो मेरे साथ।"

सब लोग सकपका गए। प्रधान ने जल्दी से सबको बुला कर कुछ बातें की। लोग अपने अपने घरों को दौड़े गए और तरह तरह की चीज़ें लेकर फॉरेस्ट गार्ड के सामने पेश किए। अंडे, मुर्गी, कद्दू, हल्दी। हाथ जोड़ कर बोले, "ये सब चीज़ें आप रख लीजिए साहब। हमें अपनी ज़मीन पर खेती कर लेने दीजिए। नही तो हम कहां जाएंगे, क्या खाएंगे?"

लोगों की मज़बूरी देख के फॉरेस्ट गार्ड का लालच बढ़ने लगा, "रख दो यह सब। पर देखो, मै बहुत जोखिम का काम कर रहा हूं। तुम लोगों को सरकारी जंगल काटने दूंगा तो मेरी नौकरी का क्या होगा?"

प्रधान बोला, "आप हमारे सब कुछ हैं। आप जैसा कहें वैसा हम करेंगे। मगर हमें खेती करने दें।"

फॉरेस्ट गार्ड ने दाएं बाएं आंखें घुमाईं और प्रधान को एक तरफ ले जा के कहा, "सब लोग 5-5 रुपए दो। तब मै तुम्हारे लिए यह खतरा उठाऊं। सोच लो। मैं परसों फिर आऊंगा।" इतना कह कर वह चला गया।

प्रधान ने सब को फॉरेस्ट गार्ड की बात बताई। काफी विचार हुआ। पर आखिर मे लोगो ने जैसे तैसे पैसे इक्ट्ठे कर के गार्ड को दिए। जिनके पास पैसे नही थे, वे साहूकार से उधार ले कर आए। उनमे माण्डिया भी था।

धनुका पहाड़ी पर खेती करना देगचा गांव वालों को गलत क्यों नहीं लगा और फॉरेस्ट गार्ड को यह गलत क्यों लगा?
सरकार समझती थी कि जंगल पर उसका हक है।
देगचा गांव के लोग समझते थे कि जंगल पर उनका हक है।
दोनों में से किसका हक ज़्यादा पुराना था?

कर्ज़ा और बंधुआ मजदूरी

फॉरेस्ट गार्ड को भेंट और पैसे दे कर जंगल मे खेती करते रहना एक नियमित बात हो गई थी। बात अखरती थी क्योंकि जिस चीज़ को अपना मानो उसके लिए दूसरे की खुशामद करते फिरना पड़ता था। और इसके लिए बार बार साहूकार से कर्ज़ा लेना पड़ रहा था।

टीकरा यही सब सोचता हुआ, गुस्सा होता हुआ, जंगल से लौट रहा था। उसके कंधे पर शिकार लदा था। सामने से फॉरेस्ट गार्ड आता दिखा। लपक के टीकरा के सामने आया और आंखें तरेर कर बोला,
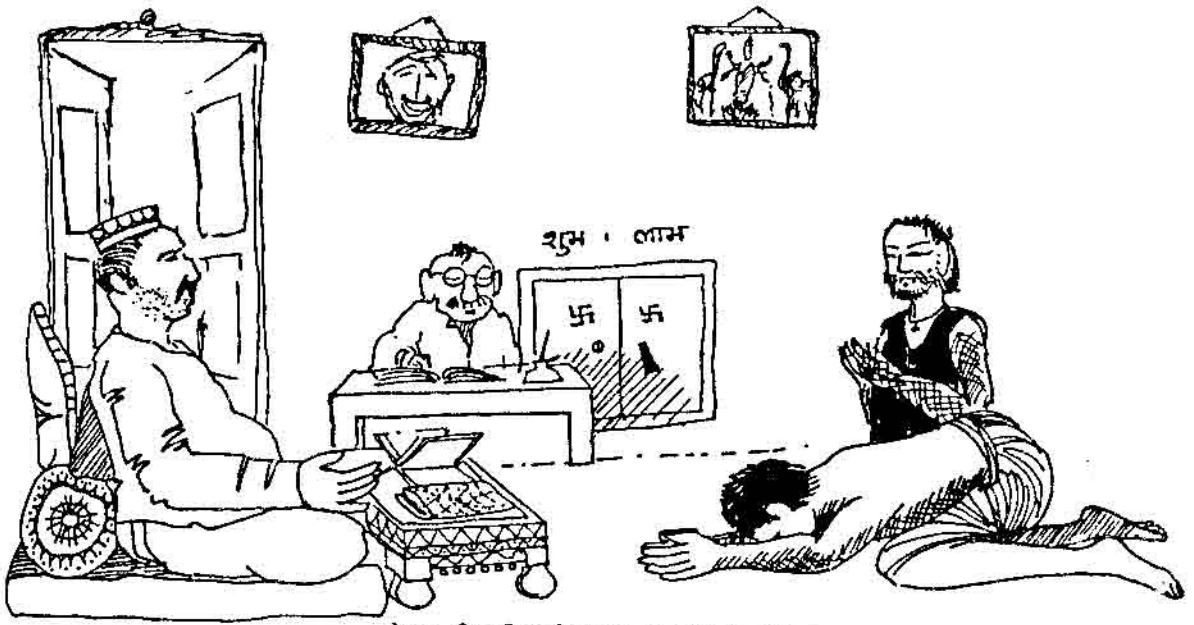
और कर्ज़ा चाहिए तो बंधुआ मज़दूर बनना होगा

"जब देखो तब जंगल से चुपचाप शिकार मार कर लाते हो। मै कुछ नही कहता। क्या, चौकी पर जा कर जुर्माना भरने का इरादा है?"

टीकरा समझ गया कि गार्ड साहब को भेंट चाहिए। पर आज न जाने उसका मन कैसा हो रहा था। तन के बोला, "आप कर लीजिए जो करना है। मै और कुछ नही दे सकता। अब तो साहूकार भी कर्ज़ा नही देता है।"

गार्ड साहब के सामने अकड़ने का अंजाम बुरा ही होना था। सो हुआ। टीकरा को सिपाही पकड़ के ले गए और चौकी मे बंद कर दिया।

माण्डिया बौखलाया हुआ साहूकार के पास पहुंचा, "सेठजी, थोड़ा कर्ज़ा और दे दीजिए। टीकरा को बंद कर दिया है। उसे छुड़ाना है।"

साहूकार रामचन्द बिसोई मन ही मन मुस्कराया। उसके मन मे कई सपने तैर रहे थे। वह देख रहा था कि दिन फिर रहे हैं। ये लोग अब कही के नही रहेंगे। पहले न जाने कहां-कहां जंगलों मे खेती करते फिरते थे। पर अब बात बात पर उससे कर्ज़ा लेने आते है। जंगल की ज़मीन भी इनके हाथ से निकल गई है।

साहूकार ने नीचे मैदान मे ज़मीन खरीदी हुई थी। अच्छी ज़मीन थी। पर उस पे हल कौन चलाएगा यही समस्या थी। वह दूसरे किसानो से या मज़दूरों से ज़मीन जुतवा सकता था पर एक ज़्यादा अच्छा उपाय उसके दिमाग मे घूम रहा था। मूंछों पर उंगली फेरते हुए बोला, "देखो भाई माण्डिया, तुम्हारा पुराना कर्ज़ा कितना है? चुकाते तो हो नही।"

माण्डिया गिड़गिड़ाया, "नही सेठजी, मना न करें।" साहूकार बोला, "तो सुनो। तुम दोनो भाईयों मे से एक को मेरा बंधुआ मज़दूर बनना होगा।"

यह सुन कर माण्डिया दो कदम पीछे हट गया। उसके चेहरे का रंग उड़ने लगा। थोड़ा रुक के साहूकार बोला, "मेरे खेत पर काम करना होगा। मै खाने को दूंगा। हर साल कर्ज़े का 2 रु. माफ कर दूंगा। हर साल रुपए मे आठ आना ब्याज लगता रहेगा। जितने साल कर्ज़ा चुके, उतने साल मेरे यहां मज़दूरी करना। मज़ूर है तो [illegible] लो, नही तो कही और जाओ।"

मंजूर नही होता तो और क्या करता माण्डिया? वह साहूकार का बंधुआ मज़दूर बना। तब टीकरा चौकी से छूटा।

देगचा गांव के लोग अंग्रेज़ों से पहले भी साहूकार से कर्ज़ा लेते थे। पर अंग्रेज़ों के समय में कर्ज़ा बहुत बढ़ने लगा - क्यों?
लोग कर्ज़ा क्यों नहीं चुका पा रहे थे?
बंधुआ मज़दूरी की शर्तें क्या थीं?
क्या तुम सोच सकते हो कि माण्डिया किसी प्रकार बंधुआ मज़दूरी से छुटकारा पा सकता था?

जमीन की नीलामी

गांव के सब लोगों के साथ टीकरा घाट के नीचे जा रहा है। इस साल घाट के नीचे की ज़मीन पर खेती करनी है। यह गांव की सबसे अच्छी ज़मीन है। ज़्यादा ऊबड़ खाबड़ नही है। यहां मिट्टी अच्छी है। उन्होंने 22 साल पहले घाट नीचे खेती की थी। अब वहां अच्छा जंगल उग गया था।

टीकरा के कंधे पर कुल्हाड़ी है - पर मन बहुत उदास है। वह अकेला कितनी ज़मीन तोड़ पाएगा? अब माण्डिया न जाने कब वापस आएगा।

घाट नीचे पहुंच कर प्रधान ने खेत बांटे और लोगों ने पेड़ों की कटाई शुरू की। देखते देखते बारिश के दिन आए और खेत बो दिए गए। फसल खड़ी होने लगी।

कटाई का समय आया। लोग हंसिये लेकर गाते हुए खेतों पर पहुंचे और कटाई शुरू करने ही वाले थे कि पुलिस के कुछ सिपाहियों के साथ एक हट्टा-कट्टा आदमी आता दिखाई दिया। हंसिये थामे हुए हाथ जहां के तहां रुक गए। आशंका से भरी आंखों ने उस आदमी की तरफ देखा। वह मैदान के एक गांव का बहुत बड़ा किसान था। उसके पास कई जोड़े बैल थे और बहुत ज़मीन थी। लोगों ने उसे कभी कभी साहूकार के घर बैठे देखा था। उसकी साहूकार से बहुत दोस्ती थी।

वह आदमी पास आकर पुलिस के सिपाहियों से बोला, "ये देखो! मैं कहता था न। मेरी ज़मीन पर ये लोग खेती कर रहे हैं। मेरी ज़मीन पर कब्ज़ा किया हुआ है। पकड़ लो इन्हें।"

लोगों की तरफ मुंह कर के वह आदमी चिल्लाया, "खड़े खड़े क्या ताक रहे हो? हंसिये पटको और थाने जाओ। इस ज़मीन को मैंने नीलामी में खरीदा है। यह ज़मीन मेरी है।"

पुलिस के सिपाही लोगों को पकड़ कर ले गए। एक बार फिर लोगों ने कर्ज़ा लिया और किसी तरह जुर्माना चुकाया।

फिर वे फॉरेस्ट गार्ड से जा कर मिले। बोले, "आप तो कहते थे जंगल में खेती कर लो। यह ज़मीन की नीलामी का मामला क्या है?"

गार्ड बोला, "अरे वो ज़मीन सरकारी जंगल में नही है। उसे सरकार ने खेती के लिए नीलाम कर दिया है। इसके बारे में मुझे नही मालूम। तहसीलदार से मिलो।"

लोग तहसीलदार से जा कर मिले। अब उनके गुस्से की सीमा नही रही थी। उत्तेजित स्वर में कहने लगे, "ये हमारे पुर्खो की ज़मीन है। हम वहां खेती करते आए हैं। आपने नीलाम कैसे कर दी?"

तहसीलदार कड़क के बोला, "कौन कहता है तुम्हारे पुर्खो की ज़मीन है? तुम्हारे नाम से डुमका पहाड़ी की ज़मीन दर्ज़ है। इतने सालों से यह घाट नीचे की ज़मीन खाली पड़ी थी। जंगल था। कोई उस पर खेती नहीं कर रहा था। हमने नीलाम कर दी ताकि वहां ठीक से खेती हो और हर साल लगान मिले। तुम लोग जैसे खेती करते हो वैसे अब नही चलेगा। यह बात तुम्हें समझ में क्यों नही आ रही?"

लोग चिल्लाए, "पर हमें तो बताया नहीं? कब नीलामी हो गई?"

तहसीलदार बोला, "तुम्हारे घर मैं बताने नहीं जाऊंगा। दफ्तर पर नीलामी का नोटिस लगा था। पर तुम लोगों को तो कुछ मालूम ही नहीं रहता। इसका मैं क्या करूं? जाओ दफा हो जाओ यहां से।"

> *नीलामी से पहले घाट के नीचे की ज़मीन किसकी थी?*
> *नीलामी के समय उस पर जंगल क्यों उगा था - खेती क्यों नहीं हो रही थी? -*
> *सरकार यह ज़मीन नीलाम क्यों कर रही थी?*

मजदूरी का जीवन

घाटी नीचे की खड़ी फसल को दूसरा ले गया। इस साल पेट भरने को भी कुछ नहीं मिला। टीकरा साहूकार से अनाज उधार लेने पहुंचा। अब तो साहूकार की हिम्मत बहुत बढ़ गई थी। बोला, "डुमका पर तुम्हारे नाम से जो ज़मीन है, उसे गिरवी रखूंगा। तभी उधार दूंगा। दो साल में उधारी नहीं चुकाई तो ज़मीन ले लूंगा। बोलो?"

बोलना क्या था? टीकरा ने "हां" कही और साहूकार ने एक कागज़ पर कुछ लिख कर दो आदमियों के सामने उसका अंगूठा लगवाया। टीकरा कोदो ले कर घर आया। थका हारा वह बैठा ही था कि उसकी पत्नी कजोदी दौड़ी आई, "सुनो. यहां से चले चलो। अब यहां नहीं रहेंगे।"

"कहां चलो? कैसी बातें करती है?" टीकरा ने कहा।

कजोदी ने उसे बताया कि एक ठेकेदार आया है। "वह वन विभाग के लिए जंगल में सड़क बना रहा है। कह रहा है मज़दूर चाहिए। हर महीने 2 रुपए देगा। चलो, हम दोनों सड़क पर काम करेंगे," कजोदी ने ज़ोर दिया। टीकरा कुछ देर सोचता रहा, "कजोदी ठीक कह रही है। यहां क्या रखा है? जंगल अपना नहीं रहा। ज़मीन नहीं रही। साहूकार की उधारी चुकती नहीं है। डुमका पहाड़ी की ज़मीन भी वो ले लेता है तो ले ले।"

अगले दिन गांव के कई और लोगों के साथ टीकरा और कजोदी सड़क पर मज़दूरी करने चल दिए। आगे भी उनका जीवन मज़दूरी करते ही बीता। जिन जंगलों में वे खेती करते थे, अब वे उन्हीं जंगलों को लकड़ी के ठेकेदारों के लिए काट देते हैं। जिन पेड़ों की राख पर वे बीज बोते थे उन पेड़ों को अब काट के रेल की पटरियां बनाने के लिए भेजते हैं।

अपना सब कुछ एक-एक कर के छिन जाने का गुस्सा उनके मन में भरा है। एक दिन वे शहर के

अगले दिन टीकरा और कजोदी मज़दूरी करने चल दिए
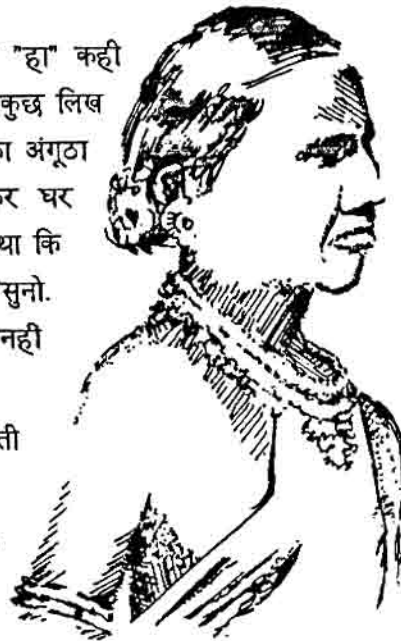
पास सड़क का काम कर रहे थे कि एक फकीर वहां से गुज़रा। वह गाता हुआ जा रहा था।

टीकरा को अपने बचपन की याद आई जब एक दिन हाट में ऐसे ही एक फकीर से उन्हें अंग्रेज़ों की सरकार बनने का पता चला था। पर आज यह फकीर

क्या कह रहा है? "आएगा, आएगा, वो दिन भी आएगा। ये सब भाग खड़े होंगे। सारे के सारे - ये अंग्रेज़, ये साहूकार, ये ज़मीदार। अरे, इन्हें सांथालों ने मार मार के भगा दिया था........ इन्हें मुण्डा भगा रहे हैं....... इन्हें....."

आदिवासियों के विद्रोह

जंगलों में रहने वाले आदिवासी किसानों की हालत इस तरह बहुत बिगड़ने लगी थी। मध्य प्रदेश में बैगा, मारिया, मुरिया, गोंड, भील, आंध्र के कोया, रेड्डी, कोलम, उड़ीसा के शबर आदिवासी, सभी अपने पुराने तरीके से खेती नहीं कर पा रहे थे। वे साहूकारों के हाथ फंसते गये। उन्हें या तो वन विभाग और ठेकेदारो का मज़दूर बनना पड़ रहा था या बाहर से आये किसानों और साहूकारों के खेतों में बंधुआ मज़दूर बनना पड़ रहा था।

जहां-जहां सड़कें और रेल लाईनें पहुंची वहां-वहां बाहर के लोगों का पहुंचना और ज़मीन हथियाना आसान हो गया।

नया वन विभाग जो बना, उसका दबाव भी बढ़ता गया। बात-बात पर जुर्माना, आदिवासियों को पीटना, गांवों में घुसकर जबरन लोगों का सामान उठा ले जाना, औरतों से छेड़-छाड़ करना, रिश्वत लेना, बेगार करवाना आम बातें होने लगी।

ऐसी कठिन परिस्थितियों के खिलाफ आदिवासियों ने बार बार जगह-जगह विद्रोह किये। विद्रोहों के दौरान वे बड़ी संख्या में पुलिस थाने, वन विभाग की चौकियां और साहूकारों के घर जला डालते। कई जगह पूरे जंगल में आग लगा देते। इस तरह विद्रोह 1856 में सांथालो ने बिहार मे किया, 1880 और 1922 में आंध्र के कोया आदिवासियो ने किया, 1910 मे बस्तर में मारिया और मुरिया आदिवासियों ने किया, 1940 मे गोंड़ और कोलम लोगों ने किया।

कुछ महत्वपूर्ण आदिवासी विद्रोह

सांथाल विद्रोह

अंग्रेज़ो के शासन की शुरूआत से बिहार के सांथाल लगातार विद्रोह करते रहे। 1855-56 में एक बड़ा विद्रोह हुआ जिसमें सांथालो ने ज़मीदारो और साहूकारों को लूटना मारना शुरू कर दिया। सांथालो ने ऐलान किया कि अंग्रेज़ो का राज्य खत्म हो गया है और वे सांथालो का स्वतंत्र राज्य बना रहे हैं। पर तीर धनुष धारी सांथाल अंग्रेज़ों की फौज का मुकाबला

एक प्रसिद्ध आदिवासी विद्रोही - बिरसा मुण्डा

अन्याय नहीं सहेंगे

नही कर पाये। उस भीषण युद्ध में पंद्रह हज़ार सांथाल मारे गये।

सीता राम राजू और कोया आदिवासी

सड़क बनाने के काम में वन विभाग आदिवासियों से बेगार करवाता था। इस के विरोध में आंध्र प्रदेश के कोया आदिवासियों ने विद्रोह किया। उन्होंने एक सेना बनाई और दो वर्ष तक लड़ते रहे। उनके नेता अल्लूरि सीता राम राजू थे। अन्त में सीता राम राजू को गिरफ्तार करके मारा गया।

कुमाऊं में वन विद्रोह (1921-22)

उत्तर प्रदेश के कुमाऊं क्षेत्र के किसानों ने जंगल पर से अपना अधिकार छिनने के बदले में वन विभाग का साथ देने से इनकार कर दिया। उन्होंने खुल कर वन विभाग के नियम तोड़े। जिन जंगलों में ठेकेदार लकड़ी काटते थे उन्हें जलाने की कोशिश हुई। लोगों ने वन विभाग के लिए बेगार करने से इनकार किया।

इन आंदोलनों के कारण अंग्रेज़ सरकार को अपनी नीति बदलनी पड़ी। जगह जगह उन्होंने अपने नियम कानून में ढील दी। कुछ क्षेत्रों में यह भी कानून बनाया कि बाहर के लोग आदिवासियों की ज़मीन नहीं खरीद सकते हैं।

स्वतंत्रता के बाद वनों पर अधिकार

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने वन आरक्षित करने और लोगों द्वारा वन के इस्तेमाल पर रोक लगाने की नीति जारी रखी है। तुमने समझा है कि यह नीति उद्योगों के लिए वनों के इस्तेमाल के लिए ज़रूरी है। पर गांव के लोगों को वनों के इस्तेमाल में इस नीति से बहुत परेशानियां होती हैं।

तुम्हारे यहां लोगों को लकड़ी कहां से व कैसे मिलती है?
आजकल लोगों को जंगल की चीज़ें प्राप्त करने में क्या सुविधाएं व कठिनाइयां हैं?
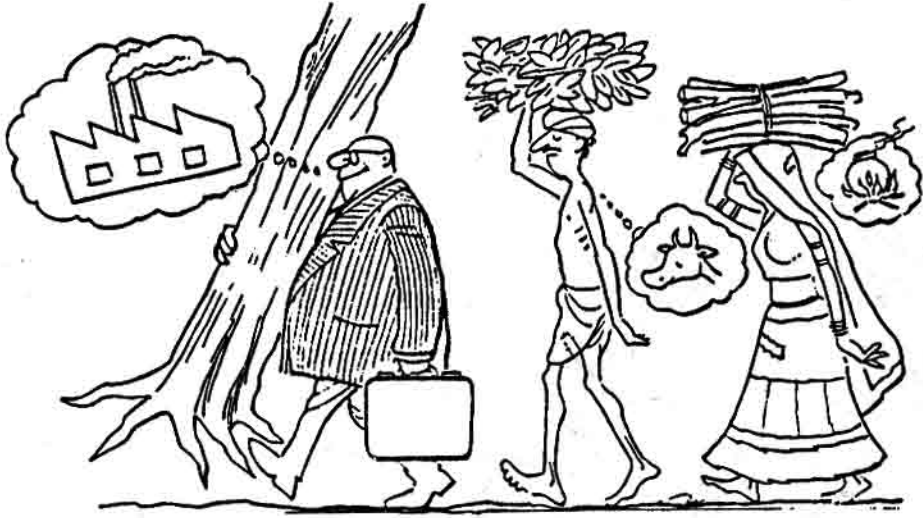
जंगल खत्म कैसे होते है?

वनो का इस्तेमाल लोगो की रोज़मर्रा की ज़रूरतो के लिए भी हो और उद्योगो के लिए भी हो - इन दो अलग-अलग ज़रूरतो का मेल या समाधान नही हो पाया है।

स्वतंत्रता के बाद बड़ी तेज़ी से उद्योग लगे है और कागज़, खेल का सामान, पैकिंग आदि के कारखानों मे लकड़ी का बहुत इस्तेमाल होने लगा है। वन बहुत तेज़ी से कट रहे हैं। इससे हमारे पर्यावरण के लिए कई मुश्किल समस्याएं खड़ी होती जा रही हैं।

o o o

अभ्यास के प्रश्न

1. क) गांव के लोग जिस तरह जंगल का उपयोग करते थे उससे जंगलो के पूरी तरह नष्ट होने का ख़तरा क्यो नही था?
   ख) यह ख़तरा कब और क्यो पैदा होने लगा?
2. वन विभाग जंगल की क्या व्यवस्थाएं करने के लिए बनाया गया?
3. वन विभाग और गांव वालो की टक्कर किन कारणो से होती थी?
4. जंगल जला के खेती किस तरह की जाती थी - 10 वाक्यो मे इसकी मुख्य बाते समझाओ।
5. जंगल जला कर खेती करने वाले गांवों के चारो तरफ जंगल पूरी तरह खत्म क्यो नही हो जाता?
6. क) अंग्रेज़ शासन से पहले आदिवासी किसान साहूकारो से कर्ज़ा क्यो लेते थे? साहूकार कर्ज़ा कैसे वसूल करता था?
   ख) अंग्रेज़ शासन मे आदिवासी किसान साहूकारो से कर्ज़ा और किन कारणो से लेने लगे? अब साहूकार कर्ज़ा किस प्रकार वसूल करने लगा?
   ग) साहूकार के तरीको मे यह फर्क क्यो आने लगा?
7. अंग्रेज़ सरकार खेती क्यो फैलाना चाहती थी और इसके लिए उसने क्या कदम उठाए?
8. क) आदिवासी लोग किस किस तरह मज़दूरी कर के अपना जीवन बिताने लगे?
   ख) वन विभाग द्वारा करवाए जाने वाले बेगार के खिलाफ कहां कहां विद्रोह हुए?
9. क) आदिवासी लोगो ने किन किन के खिलाफ विद्रोह किए? वे अपना विद्रोह और गुस्सा किस तरह प्रकट करते थे - कुछ उदाहरण बताओ?
   ख) आदिवासियों के विद्रोह किस तरह दबाए जा सके?

0

अंग्रेज शासन में उद्योग और मज़दूर

भारतीय कपड़े की प्रसिद्धि

भारत में बुना कपड़ा जग भर में प्रसिद्ध था। इंग्लैंड, फ्रांस, हॉलैंड, पुर्तगाल - सभी देशों के व्यापारी भारत का कपड़ा खरीदने आते थे। अफ्रीका, इंडोनेशिया और यूरोप, सभी जगह भारत के कपड़े की बहुत मांग थी और अच्छी बिक्री होती थी। व्यापारी खूब मुनाफा कमाते थे। पर इसका बहुत थोड़ा हिस्सा ही कपड़ा बुनने वाले बुनकरों को मिलता था। फिर भी बुनकरों के पास काम की भरमार थी। वे अपने घरों में हाथ से चलने वाले करघों पर व्यापारियों के लिए कपड़ा बुनने में लगे ही रहते थे। अमीर, ग़रीब, भारतीय, विदेशी - अलग-अलग ग्राहकों के लिए वे कई तरह के कपड़े बुनते थे।

भारतीय बुनकरों का नुकसान

मगर इंग्लैंड में 50 साल में एक ऐसा बदलाव आया जिससे दुनिया भर में भारतीय कपड़े की मांग घट गई और भारत के बुनकरों का माल बिकना कम हो गया। लगभग 1750 के बाद इंग्लैंड में कारखाने लगने लगे और मशीनों से सूत और कपड़ा बनाया जाने लगा। मशीनों से बहुत सस्ते में और बहुत अधिक मात्रा में माल तैयार होने लगा। कारखानों का बना कपड़ा बाज़ारों में बिकने आने लगा। इंग्लैंड की सरकार ने एक कानून बनाया। इस कानून के अनुसार भारत से इंग्लैंड में बिकने आने वाले कपड़े पर एक विशेष कर लगा दिया गया। भारत के कपड़े पर इंग्लैंड की सरकार ने यह कर क्यों लगाया? इंग्लैंड के लोग चाहते थे कि उनके नए-नए कारखानों को सुरक्षा मिले क्योंकि वे अभी जम नही पाए थे। भारत के कपड़े को कर लगा के महंगा कर दिया गया। इससे वहां के कारखानों के कपड़े को बाज़ार मिल पाया और कारखानों में बना कपड़ा ज़्यादा बिकने लगा। धीरे-धीरे मशीनों में सुधार हुआ और नई मशीनें बनी। इनके कारण कपड़े का उत्पादन बहुत ज़्यादा होने लगा और कपड़ा बहुत सस्ता भी हो गया।

इस तरह इंग्लैंड में भारतीय कपड़े की मांग गिरने लगी। अब इंग्लैंड के कारखाना मालिकों और व्यापारियों ने यह कोशिश शुरू की कि दुनिया भर में उनका माल बिके। इंग्लैंड के व्यापारी इंग्लैंड के कारखानों में बना कपड़ा भारत में बेचने के लिए लाने लगे। उन दिनों भारत में अंग्रेज़ों का राज्य स्थापित हो रहा था। इसलिए व्यापारियों को सरकार का सहारा भी था। उनकी कोशिशों से भारत में भी इंग्लिश कारखानों में बना कपड़ा बिकने लगा। कलकत्ता, बंबई, मद्रास जैसे शहरों के बाज़ारों में अंग्रेज़ी कपड़े का बोलबाला

इंग्लैंड में कपड़ा बिकना कम हो गया

विदेशी सूत से टक्कर लेनी पड़ी

हो गया। बहुत सस्ता होने के कारण गांवों में भी यह कपड़ा बिकने लगा। इस स्थिति में भारत के ग़रीब बुनकरों के धंधे पर असर पड़ने लगा। विदेश में और देश में, दोनों ही जगह अंग्रेज़ी कारखानों के कपड़े ने उनके बहुत से ग्राहक छीन लिए।

यही नहीं, भारत के सूत कातने वालों के धंधे पर भी चोट हुई, क्योंकि कपड़े के अलावा इंग्लैंड के कारखानों में बना सस्ता, महीन सूत भी बड़ी मात्रा में भारत में बिकने आने लगा। अब बुनकर कपड़ा बुनने में यही विदेशी सूत काम में लेते और देशी जुलाहों का सूत कम खरीदते।

समय के साथ इंग्लैंड में दूसरी चीज़ें बनाने के कारखाने भी लगे। माचिस, सीमेंट, कागज़, नट-बोल्ट, बर्तन, पेन, पेंसिल घड़ियां, पिन, कंघी, साबुन, तेल - ये सभी चीज़ें इंग्लैंड से भारत में बिकने के लिए आने लगी। भारत की अंग्रेज़ सरकार अपने उपयोग की अधिकांश चीज़ें इंग्लैंड से मंगाती थी। कागज़ व स्याही से लेकर इमारतें बनाने का और रेल बनाने का बहुत सा ज़रूरी सामान इंग्लैंड से मंगाया जाता था।

यह यूरोप में औद्योगीकरण का ज़माना था। नई मशीनों से, नई तकनीक से, काम के नए तरीकों से चीज़े बनाई जा रही थी। ये पुराने तरीकों से बनाई गई चीज़ों की तुलना में ज़्यादा मात्रा में और ज़्यादा सस्ते में बिकने लगी।

अंग्रेज़ शासन के समय में भारतीय बुनकरों और जुलाहों के धंधे पर क्या असर पड़ा?
इंग्लैंड की बनी क्या क्या चीज़े भारत में बिकने लगीं और क्यों?

भारत में उद्योगों के विकास की उम्मीद और दिक्कतें

एक तरफ कारखानों में बनी चीज़ों की होड़ के कारण भारत के कारीगरों द्वारा पुरानी विधि से बनायी जा रही चीज़ों की मांग कम होने लगी और कारीगरों का धंधा मंदा पड़ने लगा। पर दूसरी तरफ भारत के कई सेठों, व्यापारियों व पढ़े लिखे लोगों ने सोचा कि

अंग्रेज़ी व्यापारी कारखानों का बना माल भारत में बेचने लाए और इंग्लैंड में बनी तरह तरह की चीज़ें भारत में बिकने लगीं।
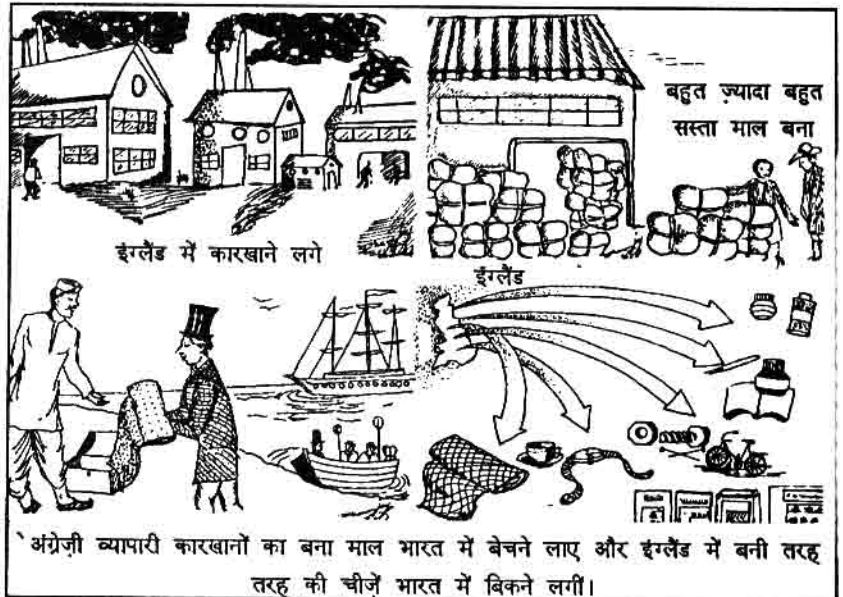
क्यो न भारत मे ही आधुनिक कारखाने डाले जाएं और मशीनों से चीज़ें बनाई जाएं? इन लोगो के मन मे एक उम्मीद जगी कि भारत के लोग इंग्लैंड की मदद से विज्ञान, तकनीक, मशीनो, कारखानो की बातें सीखेंगे और समझेंगे और जिस तरह इंग्लैंड मे उद्योगों का विकास हुआ है, वैसा विकास भारत मे भी होगा।

शुरू मे कुछ जोशीले लोगों ने कारखाने डालने की कोशिश की, पर वे ज़्यादा सफल नही हुए। कारखाने चलाने के लिए जानकारी, अनुभव, मशीनों और धन की ज़रूरत थी। ये चीज़े भारत में आसानी से उपलब्ध नही थीं।

यही नहीं, जो धनी भारतीय और अंग्रेज़ लोग व्यापार धंधे मे रुचि रखते थे, उनका सारा ध्यान विदेशी व्यापार में लगा हुआ था। विदेशो से बना हुआ माल लाकर भारत में बेचना और भारत का कच्चा माल विदेशो मे बेचना - यह एक बड़ा ही फायदेमंद धंधा बना हुआ था।

बड़ी-बड़ी यूरोपीय कंपनियो ने इस धंधे मे धन लगाया हुआ था और भारत के सेठ व व्यापारी भी उनकी सहायता में लगे थे।

यूरोपीय कंपनियां अफीम, नील, कॉफी व चाय के बगान लगाती और इन फसलो को उगाकर तैयार कर के पैक करती और अपने जहाज़ों से इंग्लैंड व यूरोप में बिकने भेजतीं। ये कंपनियां बंगाल में जूट और महाराष्ट्र में कपास की खरीदी करतीं और इंग्लैंड के कारखानो के लिए भेजतीं। वे बिहार व बंगाल में कोयला खदानें खोलतीं ताकि भारत में रेलगाड़ियां और स्टीमर चल सकें। रेलगाड़ियो और स्टीमरो की मदद से ही वे भारत में जगह-जगह से कच्चा माल बाहर भेज सकती थी और इंग्लैंड के कारखानो का तैयार माल भारत मे जगह-जगह बिकने के लिए पहुंचा सकती थी।

धनी लोग भारत मे कारखाने डालने की बजाय विदेशी व्यापार में पैसा लगाने की सोचते थे क्योंकि इसमे फायदा निश्चित था। यह ज़रूर था कि भारत में कारखाने डालने के लिए कच्चा माल उपलब्ध था और यहां बड़ी संख्या में सस्ते मज़दूर भी मिल सकते थे। फिर भी भारत में कारखाना डालना जोखिम भरा काम लगता था।

अंग्रेज़ी कारखानो की होड़ में भारत के कारखाने सफल हो पाएंगे इस बात का भरोसा नही हो पाता था। यही डर रहता था कि भारतीय कारखानो मे बने माल की तुलना मे इंग्लैंड से आया माल ज़्यादा

बिकेगा क्योकि वह सस्ता था। ऐसे मे अगर सरकार सहायता करती तो कुछ बात बन सकती थी।

अंग्रेज सरकार की नीति

सन् 1850 से ही, पहले बंबई मे, और फिर अहमदाबाद मे बहुत हिम्मत के साथ कुछ कपड़ा मिलें शुरू कर दी गईं थी। इस तरह भारत में भी मशीनो से कपड़ा बनना शुरू हो गया था। पर इंग्लैंड के कपड़ों की बिक्री भारत में बहुत हो रही थी।

इस स्थिति में कई पढ़े-लिखे लोगों ने और कारखाना मालिको ने यह मांग की कि इंग्लैंड से आ रहे कपड़े पर सरकार विशेष कर लगाए ताकि भारत में बन रहे कपड़े को सुरक्षित बाज़ार मिल सके। विशेष कर लगने से अंग्रेज़ी कपड़ा भारत में महंगा बिकता और उसकी तुलना में भारतीय कारखानों में बना कपड़ा सस्ता बिकता। इस विशेष कर से भारतीय उद्योगों को बढ़ावा मिलता।
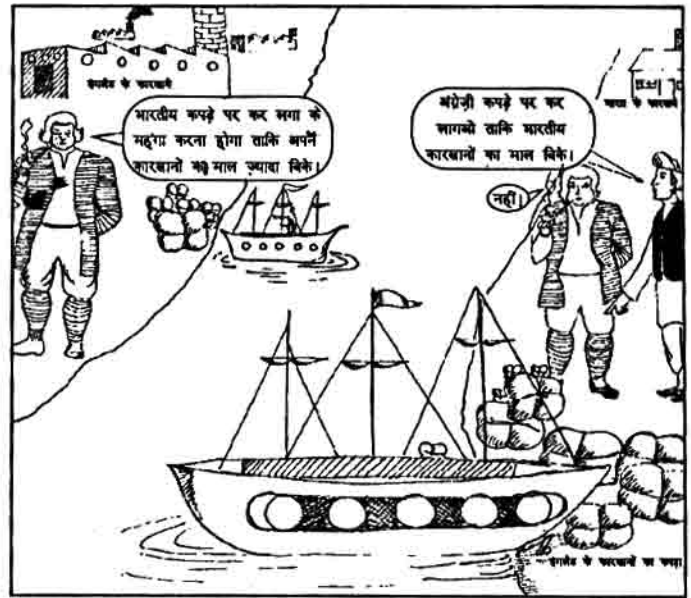
तुम जानते हो कि इंग्लैंड की सरकार ने इंग्लैंड के कपड़ा उद्योग की सहायता के लिए भारतीय बुनकरों के कपड़े पर कर लगाया था। पर उसी सरकार ने भारतीय उद्योगों की सहायता के लिए अंग्रेज़ी कपड़े पर ऐसा कर लगाने से इनकार कर दिया। इंग्लैंड के कारखाना मालिकों और व्यापारियों का अंग्रेज़ सरकार पर इतना दबाव था कि सरकार उनके हितो के खिलाफ कुछ नही कर पाती थी।

सन् 1896 मे भारत की अंग्रेज़ सरकार को आमदनी की सख्त कमी हुई। सरकार अपना आमदनी बढ़ाने के तरीके सोचने लगी। तब अपनी मुश्किल की घड़ी में सरकार ने भारत में आ रहे अंग्रेज़ी कपड़े पर $3\frac{1}{2}\%$ कर लगा दिया। पर इससे अंग्रेज़ी कपड़े के धंधे का नुक्सान न हो इसलिए सरकार ने तुरंत उतना ही कर ($3\frac{1}{2}\%$) भारत के कारखानो में बन रहे कपड़े पर भी लगा दिया।

यह कर भारतीय लोगो और अंग्रेज़ सरकार के बीच छिड़े लंबे झगड़े का कारण बना। भारतीय कारखानों के माल पर कर लगाकर सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वो अंग्रेज़ी कारखानों के हितो की ही रक्षा करेगी। भारत मे इस कर का कड़ा विरोध हुआ और इसे हटाने की मांग लगातार उठती रही।

> *भारत में यूरोपीय कंपनियां और भारतीय सेठों को किन-किन चीज़ों के धंधे से मुनाफा होता था?*
> *भारत में कारखाने डालने में लोगों ने क्या क्या कठिनाइयां महसूस कीं?*
> *1896 में अंग्रेज़ सरकार ने भारतीय कारखानों के कपड़े पर $3^1/_2$% कर क्यों लगाया?*

सरकार के संरक्षण के बिना भी भारत मे कपड़ा, सूत, शक्कर, जूट, कागज़, माचिस, सीमेंट के कारखाने शुरू हुए। पर उनका तेज़ी से विकास 1914 के बाद ही हुआ।

विश्व युद्ध से भारतीय उद्योगों को मदद मिली

1914 से 1918 के बीच जब विश्व युद्ध छिड़ा तब कई कारणों से विदेशी माल कम मात्रा में भारत पहुंचा। एक कारण तो यह था कि माल-वाहक जहाज़ युद्ध के काम में लगा दिए गए थे, इसलिए जहाज़ों की कमी हो गई थी। यूरोप के कारखानों मे भी युद्ध की ज़रूरत की चीज़ें बनने लगी थी इसलिए भारत के बाज़ार के लिए भेजा जाने वाला सामान कम मात्रा में बना।

इस तरह के हालात में भारत में जो कारखाने डले थे उनका माल बड़ी मात्रा में बिका। बिक्री तेज़ होने के प्रोत्साहन से उद्योगों में तेज़ी से विकास हुआ। युद्ध समाप्त होने के बाद भारतीय कारखानों के लिए बड़ी संख्या में यूरोप से मशीनें खरीदी गईं और नए कारखाने डाले गए। भारत के उद्योगपति बहुत ज़ोरों शोरों से यह मांग करने लगे कि सरकार विदेशी माल पर कर लगाए ताकि भारतीय माल की बिक्री अधिक बनी रहे।

सरकार को कई कारणो से यह मांग धीरे-धीरे स्वीकार करनी पड़ी। 1917 के बाद एक-एक कर के अनेको विदेशी सामानों पर कर लगे। इनकी सहायता से भारत में लगे कारखाने काफी विकास कर पाए।

> *विश्व युद्ध के समय भारतीय कारखानों का तेज़ी से विकास क्यों हुआ?*

स्वतंत्रता के समय भारतीय उद्योगों की समस्याएं

लंबे संघर्ष के बाद अंग्रेज़ सरकार की थोड़ी सहायता भारतीय उद्योगों को मिली थी। पर फिर भी कई समस्याएं बनी रहीं। बहुत अधिक संख्या में कारखाने

भारत में यूरोपीय कंपनियों का बोलाबाला था पर भारतीय कंपनियां भी आगे आने लगी
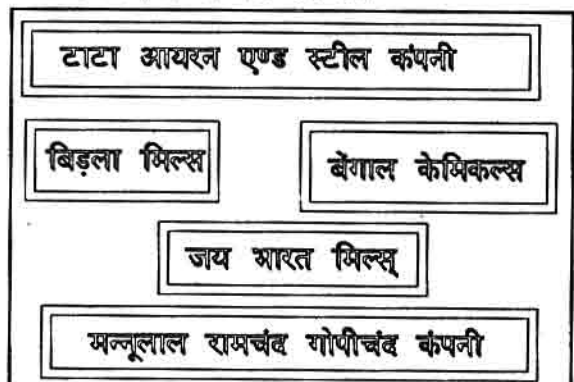
बैंक, जहाज़ आदि यूरोपीय सेठो व कंपनियो के हाथ मे थे, भारतीयो के हाथ में नही। यूरोपीय होने के कारण इन कंपनियों को बहुत से फायदे थे। अंग्रेज़ सरकार के सभी प्रकार के अफसरों, अधिकारियों तक उनकी पहुंच आसान थी जबकि भारतीयों की ऐसी पहुंच हो ही नही सकती थी। सारा विदेशी व्यापार इन कंपनियो के हाथ मे था इसलिए इनके पास धन की भी कमी नही थी।

हालांकि यूरोपीयो के प्रभाव के बावजूद भारतीय उद्योगपति काफी आगे बढ़े थे। कपड़ा उद्योग पर सबसे ज़्यादा भारतीय उद्योगपतियो का ही नियंत्रण था।

भारतीय उद्योगपतियो की उपलब्धि का सबसे बड़ा उदाहरण था जमशेदजी टाटा नाम के उद्योगपति द्वारा जमशेदपुर में इस्पात बनाने का कारखाना डालना।

भारतीय उद्योगों को विदेशी माल पर कर के रूप मे सरकार से थोड़ी सी सहायता तो मिली थी पर यह काफी नही थी।

उद्योगो के पूरे विकास के लिए रेल, सड़क, बिजली, कोयले, लोहे की सुविधा जितनी मात्रा में चाहिए थी, अंग्रेज़ सरकार का इस ओर उतना ध्यान नही था।

भारतीय उद्योगपतियो को कारखाने डालने के लिए सारी मशीनें विदेश से खरीदनी पड़ती थी। भारत में मशीन बनाने का उद्योग शुरू ही नही हो पाया था।

भारत मे उद्योगो के विकास के लिए वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, तकनीशियनो की मदद चाहिए थी। ये भी विदेशी लोग ही दे पाते थे क्योंकि भारत में वैज्ञानिकों, इंजीनियरो की संख्या भी बहुत कम थी।

अंग्रेजो के समय में ही उद्योगपतियो के अनेक संगठन बने जिसमे फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीस (फिकी) प्रमुख था। इन संगठनो ने उद्योगपतियो की समस्याओ को लगातार सरकार के सामने रखा।

अंग्रेज़ शासन के समय में कौन-कौन से उद्योग भारत में स्थापित हो गए थे?
स्वतंत्रता के समय भारत के उद्योगों के विकास में क्या-क्या कठिनाइयां थी?

स्वतंत्रता के बाद

स्वतंत्र भारत की सरकार ने उद्योगों को योजनाबद्ध तरीके से बढ़ावा दिया। इस विषय के बारे में तुम दूसरे पाठ में विस्तार से पढ़ोगे। अंग्रेज़ शासन के खत्म होने और भारतीयो की स्वतंत्र सरकार बनने से देश के औद्योगिक विकास की कई समस्याएं दूर हुई।

भारत में मज़दूरों के शुरू के दिन

औद्योगिक नगर और मज़दूरो की बस्तियां

सन् 1850 से भारत मे मशीनो वाले उद्योग खोले जाने लगे थे। सबसे बड़ा उद्योग था कपड़ा और सूत बनाने का। 1905 में कपड़ा उद्योग में लगभग सवा दो लाख मज़दूर काम करते थे, जूट कारखानों मे लगभग डेढ़ लाख मज़दूर थे और कोयला खदानो मे लगभग 1 लाख मज़दूर लगे थे।

उद्योगो में रोज़गार पाने की आशा ले कर गांवो से ज़रूरतमंद किसान, मज़दूर और कारीगर शहर आने लगे थे। उनके पीछे उनके गांवो से उनके रिश्तेदार, पड़ोसी, मित्र भी आते गए और शहरो मे मज़दूरो की संख्या बढ़ने लगी। कारखानो के इर्द-गिर्द मज़दूरो की झोपड़ियां और बस्तियां बनने लगीं। इस तरह कानपुर, बंबई, अहमदाबाद, कलकत्ता, मद्रास जैसे कई नगर भारत के औद्योगिक नगर बने।

काम के हालात

रोज़ पौ फटने पर मिलो मे काम शुरू हो जाता था और सूरज डूबने पर ही मशीन रुकती थी। मुंह अंधेरे ही नींद से उठ के मज़दूरो की कतार मिलो
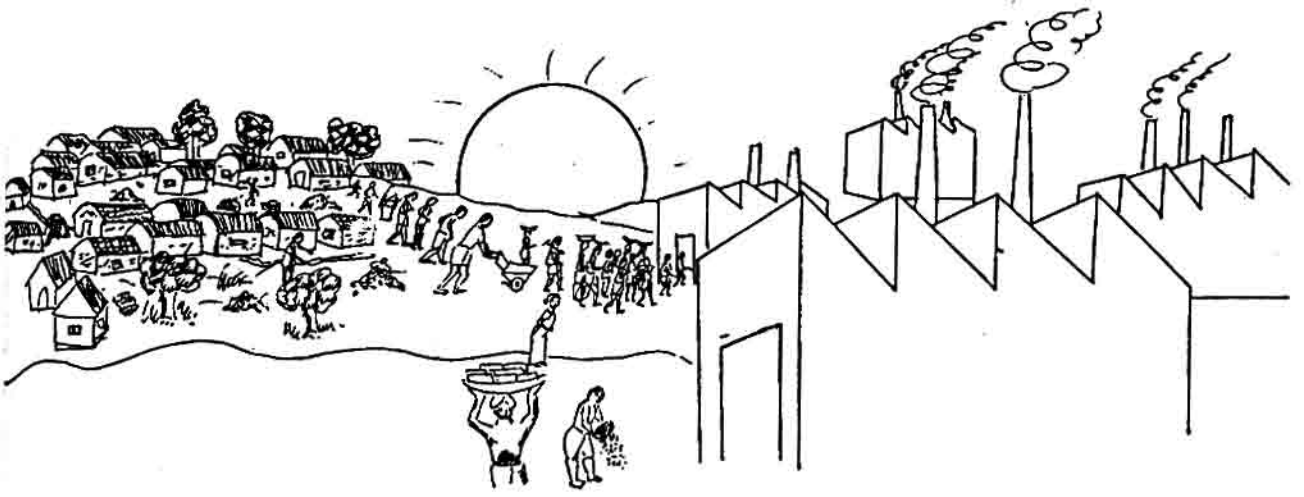
औद्योगिक नगर बने जिसमें मज़दूरों की बस्तियां खड़ी होने लगी

की ओर चल देती थी - आदमी भी और कई औरतें और बच्चे भी।

एक बार मशीन पर लगे तो बस फिर रुकने का नाम नही था। दिन भर में खाना खाने के लिए भी कोई निश्चित अवकाश नही था। काम के बीच में 15-20 मिनिट निकाल कर, और उतनी देर किसी दूसरे को काम संभालने की बात कह कर, मज़दूर खाना खा लेते थे। खाना खाने की कोई अलग जगह भी नही थी।

मिलों की उमस, गर्मी, शोर, धूल और घुटन में दिन भर निकल जाता। जब सूरज डूबता और अंधेरे में दिखना बंद हो जाता तब मशीनें रुकती और छुट्टी होती।

ऐसे महीनों तक चलता था। सप्ताह में एक दिन छुट्टी रहेगी - यह नियम भी नही था। बस, साल में आने वाले बड़े तीज त्यौहारों पर मालिक छुट्टी दे देता था।

लेकिन साल के प्रत्येक दिन काम करना तो संभव नही है। हारी बीमारी घर परिवार के काम - ये भी तो लगे रहते हैं। थकान भी होती है। ऐसे में जिस दिन मज़दूर काम पर नही पहुंचे उसकी दिन भर की पगार मारी जाती थी।

उन दिनो भुगतान भी माल के हिसाब से ही होता था। जितना माल बनाया उतना पैसा मिलेगा, यह मालिक की शर्त थी। अगर मशीन खराब हो जाए या कच्चा माल देर से मिले या कम मिले, और इन कारणों से माल कम बने - तो इसमें मज़दूर की गलती या ज़िम्मेदारी नही है। फिर भी, मालिक मज़दूरों के पैसे काट लेता था। यानी, मज़दूरों को महीने भर की कोई निश्चित आमदनी नही मिल पाती थी।

इतना ही नही, मालिक महीने के अंत में मज़दूरों का पूरा भुगतान भी नही करता था। अगले महीने के आखिर तक पैसे रोक के रखता था। ऐसे में मज़दूर काम छोड़कर जाना चाहें तो नही जा सकते थे - क्योंकि उनकी पिछले महीने की मज़दूरी मालिक के चगुंल में फंसी थी।

बिजली आई और काम बढ़ा
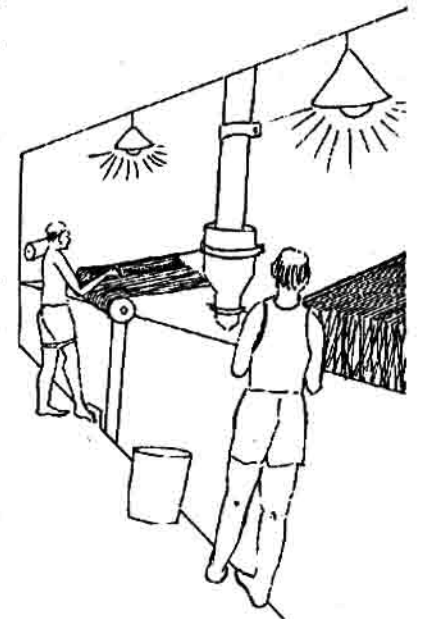
जुर्मानों का ज़ोर था। मालिक बात-बात पर मज़दूरों से जुर्माना लेता था। देर से आने पर, कपड़ा खराब हो जाने पर, मन लगा के काम नही करने पर जुर्माने होते थे और महीने की पगार में से काट लिए जाते थे।

ऐसे हालातों में औरतों, आदमियों, बच्चों - सभी को गर्मियों में 14 घंटों तक और सर्दियों में 12 घंटों तक काम करना होता था।

तब 1880 में एक नयी बात शुरू हुई। मिलों में बिजली के बल्ब लगने शुरू हुए। उजाला बढ़ा तो मज़दूरों के काम के घंटे बढ़े। अब तो सूरज डूबने पर काम रोकने की ज़रूरत नहीं थी। अब 15-15 घंटे काम लेना आम बात हो गई।

काम के दौरान इतनी सारी समस्याएं तो थीं, ऊपर से रोज़गार की कोई सुरक्षा भी नहीं थी। मिल को घाटा होने लगे तो मालिक मज़दूरों की छंटनी कर देता था। घाटे के समय मज़दूरों के वेतन में भी कटौती कर दी जाती थी। लेकिन मुनाफा होने पर मालिक ने अपने आप मज़दूरों का वेतन बढ़ा दिया हो - ऐसा तो कभी नही होता था।

भारत मे कारखानों के शुरू के दिनों में -
मज़दूरों के काम और आराम को ले कर क्या नियम थे?
मज़दूरी के भुगतान के क्या नियम थे?
मज़दूरों की आमदनी किन-कन कारणो से मारी जाती थी?
बिजली के बल्ब लगने से मज़दूरों पर क्या असर पड़ा?

मज़दूरों के संघर्ष

ऐसे बुरे काम के हालातों के खिलाफ मज़दूरों ने शुरू से ही लड़ाई छेड़ी। 1870 से ही बंबई में लगातार हड़तालें की जाने लगीं। शुरू में मज़दूरों के

मज़दूर हड़ताल पर निकल आते

कोई संगठन या यूनियन नही बने थे। हर मिल के मज़दूर अक्सर आपस में मिल कर हड़ताल करते थे और मालिकों पर दबाव डालते थे।

जैसे 1892 में बंबई के मिल मालिक मज़दूरों के वेतन में कटौती करने की सोच रहे थे। इस स्थिति में सभी मिलों के मज़दूर संघर्ष के लिए तैयार होने लगे। सरकार ने कारखानों की जांच के लिए एक अधिकारी नियुक्त किया जो फैक्ट्री इंस्पेक्टर कहलाता था। फैक्ट्री इंस्पेक्टर ने मज़दूरों के बारे में लिखा हुआ था - "अगर वाकई पगार में कटौती की जाती है, तो बहुत संभव है कि बंबई में आम हड़ताल हो जाएगी। हालांकि मज़दूरों की कोई संगठित ट्रेड यूनियन नहीं है, फिर भी अधिकांश मज़दूर एक सी जात बिरादरी व गांवों के हैं और आसानी से एक जुट हो कर कदम उठाते हैं।"

मज़दूर किस तरह संघर्षशील होकर अपने हितों की रक्षा खुद करते थे, इसके कुछ उदाहरण पढ़ो।

1900-1901 में बंबई की 20 मिलो ने एक साथ मज़दूरो के वेतन में $12^1/_2\%$ की कटौती कर दी। इस कटौती की प्रतिक्रिया में 20,000 मिल मज़दूरो ने काम रोका और हड़ताल पर निकल आए। बीसो मिलें 10 दिन तक बंद रही।

इसी तरह 1919 में, जब महंगाई बढ़ रही थी और मज़दूरो की पगार नही बढ़ी थी, तब बंबई की सभी मिलो के डेढ़ लाख मज़दूर हड़ताल पर निकल आए और 12 दिन तक मिलें बंद रही।

वैसे, यह बात ध्यान देने लायक है कि मज़दूर सिर्फ अपने वेतन के लिए नही लड़े, बल्कि अंग्रेज़ो के विरुद्ध भारत की स्वतंत्रता के लिए भी लड़ते रहे।

1908 में अंग्रेज़ो ने भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले एक प्रसिद्ध नेता लोकमान्य तिलक को 6 साल कालापानी की सज़ा दे दी थी। इस के विरोध मे बंबई की सारी की सारी मिलो के मज़दूरो ने 6 दिन तक लगातार हड़ताल की। इस तरह मज़दूरों ने स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लेकर कई बार हड़तालें की।

मज़दूरों के द्वारा की गई हड़तालों के कुछ कारण बताओ।

मजदूरों की समस्याओं पर विचार

अजीब बात यह थी कि शुरू में भारत के अधिकांश पढ़े लिखे लोग मज़दूरो की हालत की तरफ ज़्यादा ध्यान नहीं दे रहे थे। उनके मन में सब से ऊपर यही चिंता रहती थी कि किसी तरह भारत में उद्योगों का विकास हो पाए। शुरू में वे इस बात की चिंता नही कर रहे थे कि उद्योगों में मज़दूरों की स्थिति कैसी होनी चाहिए।

पर सबसे अजीब बात तो यह हुई कि इंग्लैंड के कारखाना मालिक, व्यापारी और समाज सेवक लोग भारतीय मज़दूरों की हालत पर चिंता व दुख ज़ाहिर करने लगे और ज़ोर-शोर से सरकार का ध्यान उनकी तरफ खींचने लगे।

इंग्लैंड के उद्योगपति और समाज सेवक सरकार पर बहुत दबाव डालने लगे कि सरकार को भारत में मज़दूरों की हालत सुधारने के लिए वैसे ही कानून बनाने चाहिए और लागू करने चाहिए जैसे इंग्लैंड में हैं। इस दबाव के कारण सरकार सोचने लगी कि कारखानों में मज़दूरो के काम के घंटे कम करने का कानून बनाना चाहिए। मज़दूरों को अवकाश देने का कानून बनाना चाहिए।

ये बातें भारत के उद्योगपतियो और पढ़े लिखे लोगों को बहुत बुरी लगी। उन्हें लगा कि मज़दूरों को काम के निश्चित घंटे और अवकाश जैसी सुविधाएं देने से मिलों का उत्पादन कम हो जाएगा। मालिको का खर्च बढ़ जाएगा। इससे कारखानों में बनने वाली चीज़ों के दाम बढ़ जाएंगे। इस स्थिति में इंग्लैंड से बन कर आया माल ज़्यादा आसानी से बिक पाएगा सौर भारतीय उद्योगों का विकास चौपट हो जाएगा।

भारतीय उद्योगपतियो का यह शक तो शायद ठीक ही था कि इंग्लैंड के उद्योगपति अपने स्वार्थ के लिए ही भारतीय मज़दूरो का ख्याल रखने का ढोंग कर रहे थे। इस स्थिति में भारत के पढ़े लिखे लोगों के मन में भी यह विश्वास बैठा था कि मज़दूरों के हित में कानून बनने से भारत में उद्योगों का विकास नहीं हो पाएगा। 1875 में बंगाल के एक प्रमुख अखबार में छपी इन पंक्तियों से उन दिनों का सोच-विचार स्पष्ट होता है - "इस नए उद्योग के नाश होने से तो यह ज़्यादा अच्छा है कि मज़दूर अधिक संख्या मे मरते रहें। .... एक बार हमारे उद्योग अच्छी तरह जम जाएं, फिर हम अपने मज़दूरों के हितों की रक्षा कर सकते हैं।"

उद्योगपतियों और पढ़े लिखे लोगों के मन में डर ज़रूर था पर यह पूरी तरह ठीक नही था। भारत
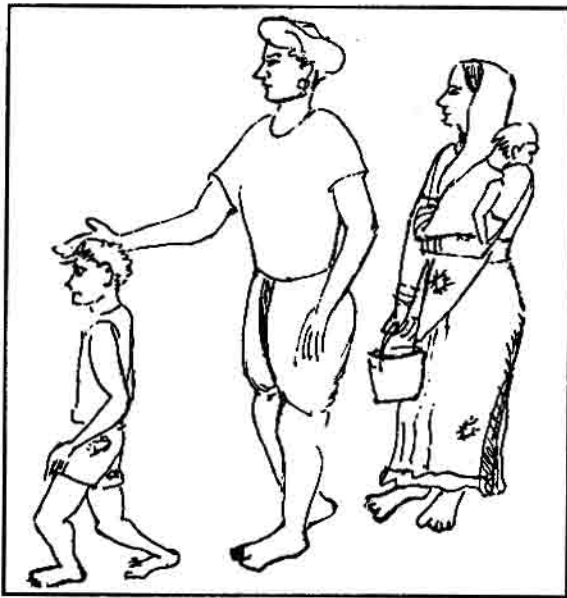
मज़दूरो मे आदमी थे, औरते भी और बच्चे भी

मे लगे कारखाने मुनाफा कमाने लगे थे। मालिक नई-नई मिलें खोल रहे थे। जैसी भी स्थिति हो मज़दूरों की हालत मे सुधार तो सबसे ज़रूरी था क्योंकि उन्ही की मेहनत के बल पर उद्योगों का विकास होना था।

मजदूरों के हित में कानून

सरकार ने 1881 मे पहला फैक्ट्री एक्ट लागू किया और मुख्य रूप से मज़दूरी करने वाले बच्चों के हित मे ये नियम बनाए

- सात साल से छोटे बच्चों को मज़दूर नही बनाया जाएगा।
- सात से बारह वर्ष के बच्चो से दिन मे नौ घंटे से ज़्यादा काम नही लिया जाएगा और उन्हें रोज़ एक घंटे का अवकाश दिया जाएगा। उन्हें महीने मे 4 दिन की छुट्टी भी दी जाएगी।

1891 मे महिला मज़दूरों के हित में नियम बने -

- महिला मज़दूरो से दिन में 11 घंटे से अधिक काम लेना मना हुआ।
- महिला मज़दूरो को दिन मे $1^1/_2$ घंटे अवकाश मिलने का नियम बना।
- बच्चों के काम के घंटे 9 से घटा कर 7 कर दिए गए और 9 साल से कम उम्र के बच्चों को मज़दूर बनाना मना हुआ।

उद्योगो में काम करने वाले मज़दूरो मे सबसे ज़्यादा संख्या पुरुष मज़दूरों की थी। उनके हित मे कानून 1911 मे जा कर ही बन पाया। 1911 के फैक्ट्री एक्ट के अनुसार -

- पुरुष मज़दूरों को 12 घंटे से अधिक काम पर रखना मना हुआ!
- हर छह घंटे के काम के बाद आधे घंटे का अवकाश मिलने का नियम बना।

इंग्लैड के उद्योगपति भारत में कारखानों के खिलाफ थे पर वे इन कारखानों के मज़दूरों का पक्ष क्यों लेते थे?

भारत के पढ़े लिखे लोग भी शुरू में कारखानों के मज़दूरों के हितों की ओर ध्यान क्यों नहीं देते थे?

मज़दूरी के कानूनों के अनुसार बच्चो, महिलाओं और पुरुषों से अधिकतम कितने घंटे काम लिया जा सकता था?

कितनी उम्र से नीचे के बच्चों को मज़दूरी पर नहीं रखा जा सकता था?

क्या तुम जानते हो कि आज कल कितनी उम्र से नीचे के बच्चों को मज़दूरी पर नही रखा जा सकता है?

इन कानूनो का पालन करने से उद्योगपतियो को क्या नुकसान हो सकता था?

मजदूर संगठन

समय के साथ मज़दूर वर्ग की समस्याएं सब के सामने उभर कर आईं। कुछ पढ़े लिखे लोग मज़दूरो का समर्थन करने लगे और उन्होंने मज़दूरो की समस्याएं लोगो को समझाने के लिए अखबारो मे लेख लिखने
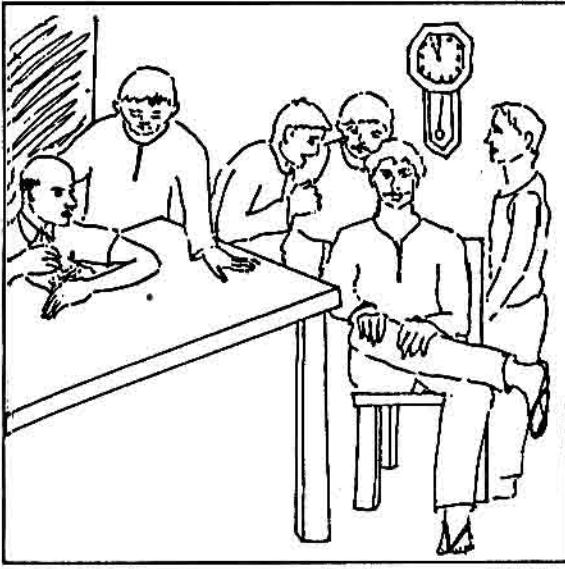
मज़दूर संगठन साल भर काम करने लगे

शुरू किए। मज़दूरों की सहायता के लिए छोटे संगठन आदि बनाने भी शुरू किए।

जब मिलों में हड़तालें होती तो हड़ताल चलाने के लिए और मालिकों से समझौता करने के लिए मज़दूरों ने पढ़े लिखे लोगों के समर्थन से अपने संगठन यानी यूनियन बनाई। धीरे-धीरे यूनियन सिर्फ हड़ताल के समय नही बल्कि साल भर, मज़दूरों के अधिकारों की देख भाल करने का काम करने लगीं। ऐसी यूनियनें 1920-25 के समय से बनने लगी। इनमें समाजवादी विचारों से प्रभावित लोग प्रमुख होने लगे। गिरनी कामगार यूनियन ऐसी एक यूनियन बनी जिसकी सहायता से 1928 में बंबई के मज़दूरों ने ज़बरदस्त हड़ताल की। अहमदाबाद में गांधीजी के प्रभाव से मज़दूर महाजन नाम की ताकतवर यूनियन बनी।

मज़दूरों के बीच यूनियन बनने से सरकार और मालिक बहुत परेशान होने लगे। अब यूनियनों व हड़तालों पर रोक लगाने के लिए कानून बनाए जाने लगे। सरकार ने मज़दूरों के कल्याण की देखभाल करने के लिए लेबर अफसर नियुक्त किए। सरकार यह कोशिश करने लगी कि मज़दूर अपनी समस्याएं सरकार के लेबर अफसर के माध्यम से सुलझाएं - यूनियन के पास न जाएं।

लेकिन यह बात मज़दूरों को स्वीकार नही थी। वे स्वतंत्र रूप से अपने संगठन बना कर अपने अधिकारों की रक्षा करना ज़्यादा ठीक समझते थे। इस तरह यूनियन व हड़ताल के अधिकार को लेकर मज़दूरों का सरकार व मालिकों के साथ संघर्ष चलता रहा

अंग्रेज़ों के समय भारत में बनने वाली दो प्रमुख मज़दूर यूनियनें कौन सी थी?
यूनियन या मज़दूर संघ मज़दूरों के लिए महत्वपूर्ण क्यों होती हैं, चर्चा करो।

स्वतंत्रता के बाद

मज़दूरों के संघर्ष खतम नही हुए। अपने वेतन बढ़ाने, नौकरी की रक्षा करने और काम के हालातों को सुधारने के लिए आज भी आए दिन हड़तालें होती हैं, जुलूस निकलते हैं। मज़दूरों ने इस तरह के संघर्ष से अपने हित में कई नए कानून भी बनवाए हैं। पर हड़तालों और यूनियनों पर रोक लगाने के लिए भी सरकार द्वारा नए नए कानून बनाए जा रहे हैं और मज़दूर इनसे जूझ रहे हैं।

o o o o o

अभ्यास के प्रश्न

1. अंग्रेज़ शासन के समय में भारत में रेल बिछाने और लोहे व कोयले की खदाने चलाने का काम किस लिए किया जा रहा था? क्या इससे भारत में उद्योगों के विकास में मदद मिली होगी? सोच कर बताओ।
2. अगर भारत में अंग्रेज़ो का राज्य नहीं बनता तो क्या भारत के बुनकरों का धंधा पूरी तरह फलता फूलता रहता? समझाओ।
3. भारत के लोग अंग्रेज़ सरकार की आलोचना करते थे क्योंकि वह अपनी ज़रूरत का सारा सामान इंग्लैड से मंगवाती थी। लोगों का कहना था कि इससे भारत में उद्योगों को बढ़ावा नहीं मिल पा रहा था।
   लोग ऐसा क्यों कहते थे - कारण समझाओ।
4. भारत के उद्योगपतियों को अंग्रेज़ सरकार से क्या दिक्कतें थी?
5. अंग्रेज़ो के शासन काल में यूरोपीय कंपनियों के लिए उद्योग लगाना ज़्यादा आसान क्यों था? दो तीन कारण लिखो।
6. जब भारत में उद्योग लगने शुरू हुए तब मजदूरों की हालत बुरी क्यो थी? 10 वाक्यों मे लिखो।
7. जब यूनियन नही बनी थी, तब भी मज़दूर अपने हितों की रक्षा के लिए क्या करते थे व कैसे?
8. मज़दूरों की यूनियनें कैसे बनीं? यूनियन बनने से मज़दूरों के जीवन मे क्या फर्क आया होगा - सोच कर बताओ।
9. सबसे पहले बाल मज़दूरों के हित में कुछ कानून बने, फिर महिला मज़दूरों के हित मे और आखिर मे पुरुष मज़दूरों के हित में कानून बने। क्या तुम सोच सकते हो कि ऐसा क्यों हुआ होगा?
   ये कानून क्यो बनाए गए थे?

मध्यम वर्ग के लोग और अंग्रेज़ी शासन

भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा देने के स्कूल कॉलेज बड़ी संख्या में खुलने लगे थे। सन् 1900 तक आते-आते देश में हज़ारों शिक्षक, वकील, डाक्टर, पत्रकार व सरकारी अधिकारी, कर्मचारी हो गए थे जो अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त थे।

अंग्रेज़ शासन के काल में आगे बढ़ने के जो-जो मौके पैदा हुए थे - उनका लाभ ये लोग भी लेना चाहते थे। पर उनके सामने कई एक जैसी समस्याएं और बाधाएं आई जिनसे इन लोगों ने मिलकर संघर्ष किया। ये शिक्षित लोग भारत के मध्यम वर्ग के रूप में जाने गए। इन्ही लोगों ने मिलकर सन् 1885 में अखिल भारतीय कांग्रेस नाम का संगठन भी बनाया।

1880 में 900 में से 16 को छोड़ कर बाकी सभी अधिकारी अंग्रेज़ थे

इसमें उन्होंने अपनी समस्याओं के साथ-साथ देश के अन्य वर्ग के लोगों की समस्याओं पर सरकार का ध्यान आकर्षित किया।

हमें सरकारी नौकरी के बराबर अवसर नहीं मिलते

शिक्षित लोगों ने सरकारी नौकरी पाने के तरीके में कई कमियां बताईं। वे कहते थे, "सरकार के सब बड़े अफसर अंग्रेज़ हैं। कहने के लिए तो सरकार कहती है कि कोई भी व्यक्ति परीक्षा में पास हो कर अफसर बन सकता है - पर

हम भारतीय लोगों के लिए परीक्षा में बैठना कितना मुश्किल बना हुआ है। परीक्षा लंदन में होती है - वहां तक जाना क्या आसान है? परीक्षा लंदन और भारत दोनों जगह होनी चाहिए।"

"परीक्षा में बैठने की अधिकतम उम्र 19 वर्ष कर दी गई है। इतनी छोटी उम्र में हम भारतीय लोग अंग्रेज़ी पढ़ लिख कर परीक्षा के लिए तैयार नहीं हो सकते। परीक्षा में बैठने की अधिकतम उम्र बढ़ानी चाहिए।"

क्या हम बराबर के इंसान नहीं?

शिक्षित लोगों ने अंग्रेज़ों के भेद-भाव भरे व्यवहार की कड़ी आलोचना की। उन्होंने भेद-भाव के कई उदाहरण लोगों के सामने रखे। जैसे -

"हमें तो अंग्रेज़ लोग बराबर का इंसान ही नहीं मानते। कहने को उनके कानून में सब बराबर हैं।

पर अगर कोई अंग्रेज़ अपराध करे तो भारतीय जज उसे सज़ा नहीं दे सकता - जबकि अंग्रेज़ जज भारतीयों को सज़ा सुनाते है।"

"हम आए दिन यह भी देखते हैं कि बराबर के अपराध के लिए अंग्रेज़ लोग हल्की सज़ा में छूट जाते हैं।"

"सरकारी नौकारी में भारतीय अफसर के प्रमोशन की बारी आती है तो उसकी जगह अंग्रेज़ अफसर को प्रमोशन मिलता है ....।"

"रेल के डिब्बे, होटल, सिनेमा, पार्क ऐसी कई जगहों पर लिखा रहता है - 'केवल अंग्रेजो के लिए।. . . कुत्तों और भारतीयों का घुसना मना है।' क्या यह अपमान सहा जा सकता है?"

"हम तो फिर भी पढ़े-लिखे संपत्तिवान लोग हैं। अनपढ़ गरीब भारतीयों के साथ अंग्रेज़ और भी बुरा बर्ताव करते हैं। अपने भारतीय नौकरों को वे बात-बात में इस तरह पीट देते हैं जिससे कइयों की मौत हो चुकी है। ज़रा सी चीज़ के लिए वे नौकरों को गोली से उड़ा दें तो भी उनका कुछ नहीं बिगड़ता।"

भारतीयों को जीवन में आगे बढ़ने व सम्मान से रहने के अंग्रज़ों के बराबर अवसर न थे। यह बात बहुत चुभती थी। खासकर पढ़े-लिखे मध्यम वर्गीय लोगों को जो अपने आपको अंग्रेज़ों के बराबर बनाने की कोशिश कर रहे थे। वे इस भेद-भाव के खिलाफ कड़े शब्दों में बोलने लगे। शिक्षित लोग यह सवाल भी उठाने लगे कि भारत का शासन किस प्रकार चलाया जाना चाहिए।

भारत में अंग्रेज शासन

आओ, देखें कि अंग्रेज़ों के समय में भारत का शासन कौन चलाता था और कैसे।

भारत इंग्लैंड के साम्राज्य का हिस्सा था इसलिए इंग्लैंड की महारानी हमारी महारानी थी और भारत के लोग उनकी प्रजा थे।

इंग्लैंड की महारानी, इंग्लैंड की संसद और सरकार भारत पर शासन करती थी। इंग्लैंड से सीधे शासन तो नहीं हो सकता था क्योंकि भारत बहुत दूर था। इसलिए भारत के शासन की ज़िम्मेदारी कुछ अधिकारियों को सौंपी गई थी। सब से बड़ा अधिकारी इंग्लैंड में रहता था। उसे "सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया" कहते थे।

भारत में रह कर काम संभालने वाला सबसे प्रमुख अधिकारी 'वाइसरॉय' या 'गवर्नर जनरल' कहलाता था। वह भारत में अंग्रेज़ राज्य के लिए पूरी तरह ज़िम्मेदार था।

महारानी विक्टोरिया अपने एक भारतीय कर्मचारी के साथ

पर, अकेले वाइसरॉय के लिए भारत के शासन के सारे मामलों में सोच विचार कर निर्णय लेना और उन्हें लागू करना संभव नही था। उसकी सहायता व सलाह के लिए एक परिषद होती थी। परिषद में सरकार के महत्वपूर्ण अंग्रेज़ अधिकारी सदस्य थे।

एक वाइसरॉय और परिषद इतने लंबे चौड़े देश में शासन नही चला सकते थे। इसलिए भारत में अंग्रेज़ साम्राज्य को मुख्य रूप से तीन हिस्सों में बांटा गया। एक हिस्सा था बंगाल प्रेसीडेन्सी, दूसरा मद्रास प्रेसीडेन्सी और तीसरा बंबई प्रेसीडेन्सी। हर प्रेसीडेन्सी में एक 'गवर्नर' नियुक्त किया गया और हर गवर्नर की सहायता और सलाह के लिए एक एक परिषद बनाई गई। इन परिषदों में भी प्रेसीडेंसी के प्रमुख सरकारी अधिकारी सदस्य होते थे।

भारत के शासन में भारतीयों का हिस्सा

भारत पर अंग्रेज़ों का शासन था इसलिए शुरू से ही अंग्रेज़ अधिकारी शासन चलाते थे।

पर 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेज़ सरकार सोचने लगी कि अगर शासन चलाने में भारत के लोगों का साथ न लिया तो भारत के लोग अंग्रेज़ों का शासन स्वीकार नहीं करेंगे और विद्रोह करते रहेंगे। इसलिए 1861 से यह नियम बना कि वाइसरॉय और गवर्नरों की परिषदों में अंग्रेज़ अधिकारियों के अलावा दूसरे लोग भी सदस्य रखे जाएंगे और इनमें से कुछ भारतीय सदस्य भी होंगे।

परिषद की सदस्यता

भारत के शिक्षित लोग इस नियम से बिल्कुल संतुष्ट नही थे। आओ, उनकी शिकायतें समझें। वे कहते,

"परिषदों में भारतीयों को रखा ज़रूर है। पर यह तो सिर्फ नाम के वास्ते है। परिषद के सदस्यों में सबसे अधिक संख्या में तो अंग्रेज़ अधिकारी ही हैं।

"अधिकारियों को छोड़ कर जो सदस्य बनाए हैं उनमें बहुत से भारत में रहने वाले अंग्रेज़ व्यापारी, मिल मालिक, चाय बगान के मालिक हैं।

"इस तरह परिषद में अंग्रेज़ ही अधिक हैं, भारतीय लोग तो तीन-चार ही होते हैं।

"हां, और जो भारतीय परिषद के सदस्य हैं उनका होना न होना बराबर ही है। वाइसरॉय को अपनी परिषद के सदस्य चुनने का अधिकार है इसलिए वह उन्हीं भारतीय लोगों को चुनता है जो अंग्रेज़ सरकार का समर्थन करते हैं।

"वाइसरॉय ने कई भारतीय राजाओं, नवाबों, उनके दीवानों और ज़मीदारों को अपनी परिषद का सदस्य बनाया है। ये लोग भारत की आम जनता का दुख दर्द समझते भी नहीं हैं और न ही अंग्रेज़ सरकार से लोगों के हित में शिकायत करते हैं। इनके परिषद में होने से क्या फायदा?"

भारत के शिक्षित लोगों को परिषद की सदस्यता से आपत्ति थी। यह आपत्ति और भी बढ़ जाती थी जब वे इंग्लैंड से तुलना करके देखते थे -

"भई, इंग्लैंड में जो संसद है उसके सदस्य लोगों द्वारा चुने जाते हैं। वे लोगों के प्रतिनिधि होते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। भारत के लोगों को भी यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे अपने प्रतिनिधि चुनें और उनके ज़रिए अपनी बात सरकार तक पहुंचाएं। लोगों की असली समस्याएं तभी सरकार द्वारा सुनी जाएंगी और हल की जाएंगी।

"हम नही चाहते कि वाइसरॉय या गवर्नर अपनी मर्ज़ी से परिषद के सदस्य चुनें। परिषद के सदस्य लोगों द्वारा चुने जाने चाहिए।"

वाइसरॉय और गवर्नर कौन थे?
उनकी परिषदों के सदस्य कैसे चुने जाते थे?
शिक्षित लोगों को परिषद की सदस्यता में क्या कमियां दिखीं?
इन कमियों को दूर करने के लिए उनके क्या सुझाव थे?

परिषद के अधिकार

भारत के शिक्षित लोगो ने परिषदो के काम करने के तरीके पर भी सवाल उठाए। ये सवाल क्या थे, आओ समझें।

"परिषद मे भारतीयो की संख्या बढ़ भी जाए तो भी क्या फायदा होगा? परिषद को कोई अधिकार ही नही है। उसका तो इतना ही काम है कि अगर वाइसरॉय या गवर्नर कोई बात विचार के लिए परिषद के सामने रखे तो परिषद बातचीत कर ले और अपनी राय बता दे।"

"हां भई। परिषद के सदस्य अगर अपनी तरफ से किसी विषय पर चर्चा करना चाहें तो उन्हें पहले सरकार से पूछना पड़ता है। वाइसरॉय या गवर्नर मना कर दें तो सदस्य उस विषय पर चर्चा नही कर सकते। ऐसी परिषद किस काम की?"

"अरे, अगर परिषद की दी हुई सलाह सरकार के लिए मानना ज़रूरी होता तो भी कोई बात बनती। पर परिषद की सलाह का इतना भी महत्व नही है। वाइसरॉय चाहे तो परिषद की सलाह ठुकरा के अलग निर्णय ले सकता है।"

"यह सब तो है ही - पर सब से ग़लत बात तो यह है कि परिषद के सदस्य सरकार के बजट पर कोई प्रश्न नही कर सकते। सरकार हम लोगो पर कर लगा के पैसा वसूल करती है और अपनी मर्ज़ी से खर्च करती है। पैसा हमारा है। कितना वसूल किया जाएगा, किस पर खर्च किया जाएगा - इन मामलो में हमारी राय भी तो लेनी चाहिए।"

लोगों की सरकार

इन बातो से हम समझ सकते हैं भारत के शिक्षित लोग अंग्रेज़ शासन के तरीके से कितने असंतुष्ट थे। वे चाहते थे कि जिस तरह इंग्लैंड में सरकार वहां के लोगों के प्रति जवाबदार होती है वैसे ही भारत में भी सरकार भारत के लोगों के प्रति जवाबदार हो।

शुरू में ऐसी उम्मीद भी बनी थी कि अंग्रेज़ भारत के लोगो को जवाबदार सरकार बनाना और चलाना सिखाएंगे। पर बहुत जल्दी यह उम्मीद खत्म हो गई और लोग समझ गए कि अंग्रेज़ भारत के लोगों के विकास की बातें करते ज़रूर हैं पर वे अपने साम्राज्य के विकास के लिए ही शासन करते हैं।

इंग्लैंड भारत पर अपने हितो के लिए शासन कर रहा था, भारत के हितो के लिए नही, इसलिए भारतीयो को शासन में पूरा हिस्सा देना संभव ही नहीं था।

हां, भारत के शिक्षित लोगों के असंतोष को देखते हुए समय समय पर कुछ प्रशासनिक सुधार किए गए। सन् 1861, 1892, 1909, 1919, 1935 में ऐसे कानून बने जिनसे शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी व हक थोड़े बहुत बढ़े।

पर इस दौरान यह स्पष्ट हो गया था कि भारतीय लोगो के हितो के लिए शासन चलाना है तो अंग्रेज़ शासन से स्वतंत्र होना होगा। अब लोग स्वराज्य के हक के लिए लड़ने लगे और अंग्रेज़ शासन हटा कर भारतीयों का स्वतंत्र राष्ट्र बनाने की कोशिश में जुट गए।

स्वतंत्रता के बाद

तुम अपने अनुभव और जानकारी के आधार पर बताओ कि मध्यम वर्ग के शिक्षित लोगों ने जो समस्याएं उठाई थी उनमें से कौन सी अब हल हो गई है - क्या अब भारतीयों को नौकरी में पूरे अवसर मिलते हैं? क्या देश की सरकार पर लोगों का नियंत्रण है?

अभ्यास के प्रश्न

1. अंग्रेज़ शासन के समय में सरकारी नौकरी पाना भारतीयों के लिए कठिन क्यों था?
2. अंग्रेज़ों और भारतीयों के बीच भेद-भाव किस तरह से होता था?
3. अंग्रेज़ शासन के नियमों में ऐसी क्या बातें थीं जिनके कारण भारत के लोग अंग्रेज़ सरकार पर नियंत्रण नहीं कर सकते थे?
4. भारत के लोग चाहते थे कि सरकार उनके प्रति जवाबदार हो। यह स्वतंत्रता के बगैर संभव क्यों नहीं था?

12 भारत का राष्ट्रीय आंदोलन

भारत के अलग-अलग वर्गों के लोग अपनी-अपनी समस्याओं और कठिनाईयों से जूझ रहे थे। किसान, आदिवासी, उद्योगपति, मज़दूर, औरतें, मध्यम वर्ग के लोग - सभी अपने जीवन के हालात सुधारने और सुखमय बनाने की लड़ाई में लगे थे।

तुमने पिछले पाठों में इन सब लोगों की समस्याओं और उम्मीदों के बारे में पढ़ा है।

> *क्या तुम बता सकते हो कि ये लोग अपने-अपने हालातों में किस तरह के बदलाव चाह रहे थे?*

समय के साथ ये अनेकों आंदोलन और संघर्ष एक-दूसरे के बारे में जानने लगे और निकट भी आने लगे। अंग्रेज़ी हुकूमत का असर सभी को झेलना पड़ रहा था। अंग्रेज़ी हुकूमत को हटा कर एक नया स्वतंत्र राष्ट्र बनाने की कोशिश होने लगी। इस कोशिश में अलग-अलग वर्गों के लोग एक-दूसरे के संघर्षों का साथ देने लगे। स्वतंत्र राष्ट्र सभी की इकट्ठी कोशिश और शक्ति से ही तो बन सकता था। यह था भारत का राष्ट्रीय आंदोलन। इस में भाग ले रहे सब वर्ग के लोग नए राष्ट्र में अपने लिए बेहतर भविष्य बनाने के सपने लेकर जुटने लगे।

नए राष्ट्र को बनाने के बारे में एक गंभीर और मुश्किल सवाल भी उठने लगा था। सवाल था कि नए राष्ट्र में भारत के अलग-अलग धार्मिक संप्रदायों को क्या स्थान मिलेगा? क्या हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सब संप्रदायों को बराबर महत्व मिलेगा? या हिंदूओं को सबसे प्रमुख स्थान मिलेगा क्योंकि वे अधिक संख्या में हैं? जो लोग या संगठन मुख्य रूप से अपने-अपने संप्रदाय का स्थान बेहतर बनाने की कोशिश में लगे थे, वे सांप्रदायिक संगठन कहे जाते थे। हिंदू महासभा और मुस्लिम लीग सबसे महत्वपूर्ण सांप्रदायिक संगठन थे।

नए स्वतंत्र राष्ट्र की लड़ाई में ये सवाल भी उठ रहे थे कि नए राष्ट्र में किन वर्गों के हित पूरे होंगे? भारत का नया, स्वतंत्र राष्ट्र ज़मीदारों का होगा या किसानों का होगा? मिल मालिकों का होगा या मज़दूरों का होगा? आदिवासियों का होगा या साहूकारों का होगा?

स्वतंत्र होने के बाद नए राष्ट्र में लोगों के विकास के बारे में भी कई विचार बनने लगे। कुछ लोग गांधीवादी तरीके से भारत के विकास की उम्मीद कर रहे थे, कुछ लोग पूंजीवादी तरीके से विकास करने की योजना बना रहे थे और कुछ लोग चाह रहे थे कि स्वतंत्र भारत का विकास समाजवादी तरीके से हो। तुम विकास के इन अलग-अलग विचारों के बारे में गुरुजी से चर्चा करो।

लोगों में नए राष्ट्र के सपने अलग-अलग थे और संघर्ष के तरीके भी कई अपनाये गए। आओ, अब राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न तरीकों और चरणों के बारे में पढ़ें।

सरकार अपने वादे पूरे करे

तुम जानते हो कि पढ़े-लिखे लोगों का एक अखिल भारतीय संगठन 1885 में बना था - 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'। इसका हर साल तीन दिन का अधिवेशन हुआ करता था जिसमें देश के हर प्रांत से प्रतिनिधि भाग लेने आते थे। इनमें सुरेंद्र नाथ बेनर्जी, फिरोज़शाह मेहता, दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे बहुत प्रसिद्ध हुए।

सन् 1919 में अमृतसर में हुए कांग्रेस अधिवेशन के प्रतिनिधिमंडल

कांग्रेस के अधिवेशन में देश के हर वर्ग के लोगो की समस्याओं पर चर्चा होती थी। सरकारी नीतियों की आलोचना भी होती थी। सरकार को कैसी नीतियां अपनानी चाहिए - इसके बारे में प्रस्ताव पास किए जाते थे।

शुरू में पढ़े-लिखे लोगों के मन में अंग्रेज़ शासन पर विश्वास था। अंग्रेज़ यह बतलाने की कोशिश करते थे कि भारतीय समाज पिछड़ा हुआ है और अंग्रेज़ों की देखभाल में ही उसका सही विकास होगा। वे कहते थे कि भारत का विकास करने के लिए ही वे उस पर शासन कर रहे हैं। पढ़े-लिखे लोग यह चाहते थे कि सरकार जो बातें कहती है और जो वादे करती है, उसे पूरी तरह निभाए। इसलिए वे सरकार से बार-बार कृपा की प्रार्थना करते थे और उन्हें उम्मीद थी कि सरकार उनके सुझाव ज़रूर मानेगी।

देश के हर हिस्से से भारतीयों द्वारा छापे जा रहे अखबार निकल रहे थे, जिनमें लोगों की कठिनाईयों व सरकारी नीतियों की विस्तार से चर्चा होने लगी।

लेकिन अंग्रेज़ सरकार पर इन चीज़ों का ख़ास असर नही पड़ा। सरकार को लगता था कि मुट्ठी भर पढ़े-लिखे लोगो की बातो की तरफ ध्यान देने की ज़रूरत नही है।

"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

जब यह बात स्पष्ट होने लगी कि अंग्रेज़ सरकार पर कांग्रेस के प्रस्तावो व सुझावो का असर नही पड़ रहा है तो विरोध की भावना तीखी और तेज़ होने लगी। बाल गंगाधर तिलक ने अपने अखबार "केसरी" में लिखा - "बारह वर्षो से चिल्ला-चिल्ला कर हमारे गले बैठ गए हैं, पर सरकार के कानों में जूं तक नहीं रेंगी हैं। .... अब यह ज़रूरी है कि हम गांव-गांव में आम लोगों को राजनीति की शिक्षा दें, उन्हें उनके अधिकार बताएं व अधिकारो के लिए लड़ना सिखाएं।"

तिलक ने लोगों के सामने यह विचार स्पष्ट किया कि कोई भी सरकार लोगो के सहयोग से ही चल पाती है। इसलिए उनका कहना था - "तुम ग़रीब हो और दबाए हुए हो। फिर अपनी ताकत का अहसास करो। अगर तुम न चाहो तो यह शासन नहीं चलेगा। तुम्हीं तो रेल और सड़कें बिछाते हो, तुम्ही तो डाक घर चलाते हो, लगान इकट्ठा करवाते हो। अंग्रेज़ शासन की कृपा की आस में मत जीओ। अपनी आत्म-शक्ति इतनी बढ़ाओ कि अपने अधिकार जीत पाओ।"

बाल गंगाधर तिलक

तिलक ने ही लोगों में जोश भरने वाला यह गरजता हुआ नारा दिया -

"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।"

तिलक के अलावा बिपिन चंद्र पाल, लाला लाजपत राय व कई और लोग इन नए विचारों व भावनाओं को मानते थे और फैलाते थे। इन्हें राष्ट्रीय आंदोलन में "गरम दल" कहा जाने लगा। इनकी तुलना में रानाडे, फिरोज़शाह मेहता आदि लोगों को "नरम दल" के नाम से पुकारा जाने लगा।

नरम दल व गरम दल की भावनाओं, विचारों और तरीकों में तुम्हें क्या अंतर दिखाई देते हैं? चर्चा करो।

<u>बहिष्कार और स्वदेशी</u>

अंग्रेज़ों से प्रार्थना करने की बजाए अपने बल पर स्वराज्य हासिल करने की भावना से दो तरह के कार्यक्रम बने -

एक, अंग्रेज़ी कपड़े, शक्कर आदि माल का बहिष्कार करना, यानी उन्हें न खरीदना। दूसरा, 'स्वदेशी' यानी अपने देश के लोगों द्वारा बनाई चीज़ों का ही उपयोग करना। 'बहिष्कार' और 'स्वदेशी' की बात लोगों में एक आंदोलन के रूप में 1905 से तेज़ी से फैली।

1905 में अंग्रेज़ सरकार के वाइसरॉय लॉर्ड कर्ज़न ने बंगाल प्रेसीडेन्सी (प्रांत) को दो हिस्सों में बांट दिया था - पश्चिमी बंगाल जिसमें हिंदू अधिक थे और पूर्वी बंगाल जिसमें मुसलमान अधिक थे। देश के लोगों के बीच इस तरह फूट पैदा करने की कूटनीति के खिलाफ लोगों में भयंकर गुस्सा फूट पड़ा। तब अंग्रेज़ी हुकूमत को कमज़ोर बनाने के प्रयत्न ज़ोर पकड़ने लगे।

अपना विरोध प्रकट करने के लिए लोगों ने बड़ी मात्रा में विदेशी सामान का बहिष्कार किया। जगह-जगह अंग्रेज़ी कपड़ों की होलियां जलाई गईं। 1906 में कलकत्ता बंदरगाह में विदेशी कपड़ा, सूत, जूते, सिगरेट - पिछले वर्ष की तुलना में काफी कम मात्रा में आए। खास कर विदेशी सिगरेट और जूतों की मांग आधे से भी कम हो गई।

लोगों में स्वदेशी का विचार पनपने लगा। वे कहते, "हम अपने उद्योग लगाएंगे, अपने स्कूल-कालेज खोलेंगे, गांव के लोगों के बीच काम करके उनकी समस्याएं दूर करेंगे। हम अपनी पंचायतें व कचहरियां चलाएंगे। हम अपने विकास के लिए अंग्रेज़ों पर निर्भर नहीं रहेंगे और अपनी आत्म-शक्ति बढ़ाएंगे।"

यह थी स्वदेशी की भावना। इसकी प्रेरणा से कई स्कूल, कॉलेज, कारखाने, पंचायतें शुरू की गईं।

लोग यह क्यों सोचते थे कि बहिष्कार और स्वदेशी कार्यक्रमों से देश को स्वराज्य मिल पाएगा - चर्चा करो।

<u>हिंसात्मक क्रांतिकारी आंदोलन</u>

बहिष्कार व स्वदेशी का तरीका भी कुछ लोगों को संतुष्ट न करता था। उन्हें लगता था कि स्वदेशी भावना को फैलाकर स्वराज्य हासिल करने में बहुत देर लग जाएगी। उन्हें अंग्रेज़ों से लड़ने का एक और तरीका ज़्यादा उचित लगता था। वह था हथियारों का इंतज़ाम करके अंग्रेज़ अफसरों की हत्या करना। "हर ज़िले में कुल अंग्रेज़ हैं ही कितने से? अगर हम पक्का इरादा कर लें तो अंग्रेज़ शासन एक दिन में खत्म हो सकता है।" औरोबिंदो घोष ने 'युगान्तर' अखबार में लिखा।

इस भावना से कई खुफिया संगठन बने और उनमें देश के प्रेम व बलिदान की भावना से अनेक नवयुवक आए। उन्होंने देश-विदेश से अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किए। इसके लिए वे सरकारी खज़ाने और सरकारी शस्त्र भंडार पर छापे भी मारे थे। अंग्रेज़ों की हत्या के प्रयास के लिए खुदीराम बसु, प्रफुल चाकी आदि क्रांतिकारी बहुत प्रसिद्ध हुए। उन्हें फांसी की सज़ा भुगतनी पड़ी पर उनके बलिदान ने लोगों को गहरे रूप से देश प्रेम की ओर खींचा।

गांधीजी

अहिंसा और सत्याग्रह

स्वराज्य के लिए अंग्रेज़ो की हत्या करने का रास्ता सब को उचित नही लगता था। हिंसा व हत्या का विरोध करने वालो मे गांधीजी प्रमुख थे। उनका मानना था कि अगर हमारी बात सत्य है तो बिना ज़ोर-ज़बरदस्ती व हिंसा के उसे प्राप्त कर सकना चाहिए। अतः हमे सत्य के लिए सिर्फ आग्रह करना चाहिए (यानी सत्याग्रह)। सत्य को हिंसा से प्राप्त करने की कोशिश नही करनी चाहिए।

गांधीजी ने सत्याग्रह करने के लिए ये कार्यक्रम बनाए - अन्याय करने वाले का सहयोग न करना (यानी असहयोग करना) और अनुचित लग रही बातों को मानने से इनकार कर देना (यानी अवज्ञा करना)। गाधीजी ने राष्ट्रीय आंदोलन में अंग्रेज़ शासन से असहयोग और अवज्ञा का तरीका जोड़ा।

जब गांधीजी राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए तो उस आंदोलन में एक नया मोड़ आंया। गाधीजी लोगों की छोटी-छोटी व ठोस दिक्कतों को हल करने के लिए आंदोलन छेड़ते थे। वे अंग्रेज़ सरकार से मांगे करते थे कि लगान कम करें, नमक पर कर हटाए, जंगल के उपयोग पर पाबंदी हटाए, शराब की बिक्री बंद करे (शराब की बिक्री से सरकार को बहुत आय मिलती थी)। गांधीजी के नेतृत्व में हज़ारों की संख्या में लोग अपनी इन ठोस समस्याओं से लड़ने के लिए आंदोलन की राह पर निकलने लगे। इसके पहले के किसी भी प्रयास से भारी मात्रा में आम लोग राष्ट्रीय आंदोलन में नहीं उतरे थे।

गांधीजी ने ही देश भर में छुआछूत मिटाने का अभियान भी शुरू किया ताकि हमेशा से ठुकराए गए लोग नया राष्ट्र बनाने के आंदोलन में शामिल हो सकें।

तुमने सहायक वाचन पुस्तक में गांधीजी की जीवनी विस्तार से पढ़ी होगी और उनके जीवन की ऐसी बहुत और बातों को समझा होगा। ऊपर दिए अंश को पढ़ कर बताओ कि गांधीजी ने राष्ट्रीय आंदोलन में क्या-क्या महत्वपूर्ण बातें जोड़ीं?

असहयोग आंदोलन 1920-22

1915 के बाद स्वराज्य की मांग ज़ोर पकड़ रही थी। इस राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए अंग्रेज़ो ने कई कदम उठाए। 1919 में रौलट ऐक्ट नाम

1922 में असहयोग आंदोलन का एक जुलूस
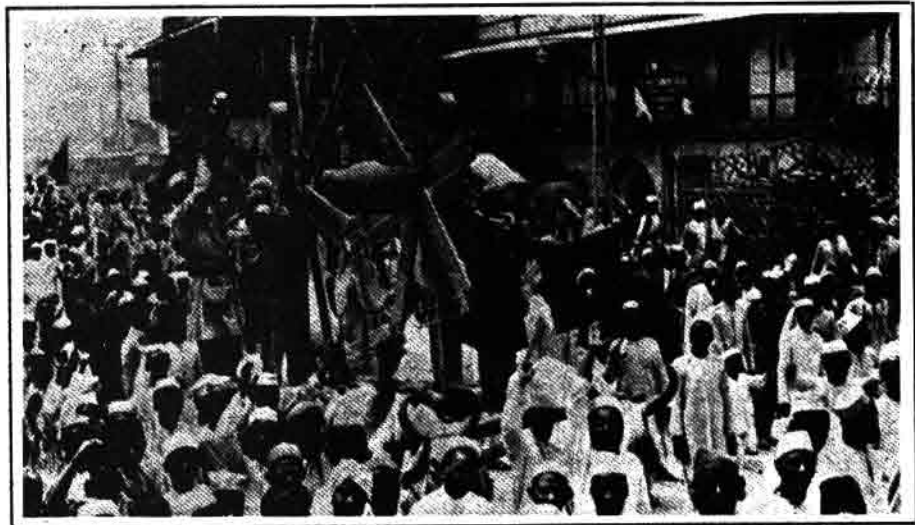
का कानून बना। इसके चलते अंग्रेज़ सरकार किसी को भी कोर्ट में लाए बगैर जेल में बंद कर सकती थी। इस कानून के विरोध में देश भर में हड़ताल की गई।

क्या तुम समझा सकते हो कि लोगों ने रौलट ऐक्ट का ज़ोरदार विरोध क्यों किया?

लोगों को सबक सिखाने के लिए जनरल डायर ने अमृतसर के जलियांवाला बाग में इकट्ठे हुए सैकड़ों लोगों पर गोलियां चलाई जिससे लगभग 400 लोग मारे गए। यह घटना 13 अप्रैल 1919 की है।

ऐसी विकट स्थिति में गांधीजी ने देश भर में असहयोग आंदोलन शुरू किया। 1857 के विद्रोह के बाद पूरे देश में एक साथ अंग्रेज़ी हुकूमत के विरोध में होने वाला यह पहला बड़ा आंदोलन था। इसका उद्देश्य था अन्यायी अंग्रेज़ शासन का सहयोग न करना। आओ, इसकी कुछ झलकें देखें -

"अंग्रेज़ों को भारत में सरकार चलानी है तो खुद चलाएं। हम क्यों उनका शासन संभालें?" यह कहते हुए कई लोगों ने सरकारी पदों से इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देने वालों में मुंशी प्रेमचंद भी थे जो गोरखपुर की सरकारी स्कूल में अध्यापक थे। उन्होंने स्कूल की नौकरी छोड़ी और एक राष्ट्रवादी अखबार में काम करने लगे।

अनेकों छात्रों ने सरकारी स्कूल-कॉलेज छोड़ दिए और स्वदेशी स्कूलों में भर्ती होने लगे। उदाहरण के लिए बिहार में 41 स्वदेशी हाई स्कूल और 600 स्वदेशी माध्यमिक व प्राथमिक शालाएं खोली गईं जिनमें जून 1922 तक 21,500 छात्र दर्ज़ हुए।

बिहार में ही लोगों को चरखे और कपास बांटने के लिए 48 खादी भंडार खोले गए और 3 लाख चरखे बांटे गए। देश भर में कई वकीलों ने कचहरी में वकालत छोड़ दी। कई जगह परिषद के चुनावों में लोगों ने वोट नहीं डाले।

अंग्रेज़ी कपड़े की दुकानों व शराब की दुकानों पर धरने दिए गए। अंग्रेज़ी चीज़ों के बहिष्कार के साथ-साथ स्वदेशी चीज़ों को बढ़ावा देने की कोशिश भी हुई। इसमें गांधीजी ने लोगों द्वारा चरखा चलाने व सूत कातने का अभियान जोड़ दिया। इससे घर-घर में देश को आत्म-निर्भर बनाने की भावना मज़बूत बनी।

छोटे-बड़े शहरों में सैकड़ों लोगों के जत्थे जुलूस में निकलते और पुलिस के आगे गिरफ्तारी देते। पुलिस उन्हें रोकती, उन पर लाठियां बरसाती, पर लोग पुलिस पर हाथ भी न उठाते। एक जत्था पिटते हुए गिरफ्तार हो जाता तो उसके पीछे दूसरा जत्था 'इंकलाब ज़िन्दाबाद', 'चरखा चला-चला के हम स्वराज्य लेंगे' और 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगाते हुए आता और शान्तिपूर्वक गिरफ्तारी देता। अंग्रेज़ शासन की हिंसा का मुकाबला लोग शान्ति और दृढ़ता से सत्य के लिए आग्रह कर के करते।

कलकत्ता में असहयोगियों का जुलूस
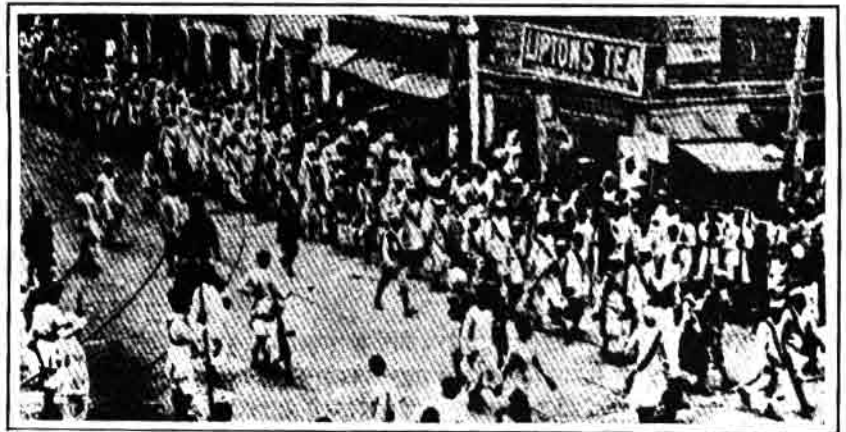
1921 में इंग्लैंड का राजकुमार भारत की यात्रा पर आया तो उसका बहिष्कार किया गया - लोग उसके स्वागत में नहीं गए और बंबई शहर में उस दिन हड़ताल रही।

दूर दराज़ के इलाकों में, गांव-गांव में गांधीजी की खबर फैल गई। किसानों, आदिवासियों, मज़दूरों में भी यह जोश भर गया कि अब चंद दिनों में अंग्रेज़ राज्य खत्म हो जाएगा - और "गांधीजी का स्वराज्य" आ जाएगा।

देश में जहां-जहां गांधीजी जाते लोग उनसे मिलने के लिए उमड़ पड़ते। किसानों और आदिवासियों को यह विश्वास हो गया था कि स्वराज्य में गांधीजी लगान कम करवा देंगे और वन विभाग के नियम खत्म करवा देंगे। वन विभाग के नियमों की परवाह न करते हुए कई जगहों के आदिवासी व किसान जंगलों में अपने ढोर चरने ले गए और जंगल से लकड़ी काट लाए।

स्वराज्य की खुशी में झारग्राम के सांथाल आदिवासियों ने हाट और ज़मींदारों के जंगल लूटे।

जलपाईगुड़ी के सांथालों ने गांधी टोपी पहन कर पुलिस के दल पर हमला किया। उन्हें यह विश्वास था कि गांधी टोपी पहनने से बंदूक की गोली उन्हें नहीं मार सकती।

सूरमा घाटी के चाय बगानों से 8,000 मज़दूर बगान छोड़ कर गांव को लौटने लगे। वे यह घोषणा करते हुए गए कि 'गांधी महाराज' ने उन्हें जाने का आदेश दिया है और 'गांधी महाराज' उन्हें गांव में ज़मीन दिलवाएंगे।

1920-22 के बीच अवध के किसान बाबा रामचंद्र के साथ ज़मींदारों का विरोध कर ही रहे थे। अब उत्तर प्रदेश में किसानों ने जगह-जगह गांधीजी के नाम पर ज़मींदारों का विरोध किया और बटाई देने से मना किया।

इस तरह देश भर में उथल-पुथल मच गई और लोगों में अन्याय व अत्याचार के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए लड़ने की ज़बरदस्त भावना उमड़ पड़ी।

पर, 1922 में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन बंद करवा दिया क्योंकि उत्तर प्रदेश में चौरी-चौरा नाम की जगह पर किसानों के जुलूस ने पुलिस थाने को आग लगा दी थी। इसमें 22 सिपाही मारे गए। किसान थाने पर विरोध प्रदर्शन के लिए आए थे क्योंकि पुलिस ने उनके एक साथी को बहुत मारा था। जब वे थाने पर आए तो पुलिस ने उन पर भी गोली चलानी शुरू की। गुस्से में आकर किसानों ने थाने में आग लगा दी। 22 सिपाहियों की हत्या के जुर्म में सरकार ने 19 किसानों को फांसी पर चढ़ाया और 150 किसानों को काले पानी का दंड दिया।

गांधीजी ने चौरी-चौरा कांड के बाद असहयोग आंदोलन वापस क्यों लिया - समझाओ।

पूर्ण स्वराज्य का नारा और नागरिक अवज्ञा आंदोलन 1930-32

1928 में अंग्रेज़ सरकार ने भारत के शासन के नियम बनाने के लिए साइमन नामक व्यक्ति के नेतृत्व में एक समिति बैठाई। इस समिति में एक भी भारतीय न था। इससे बिलकुल स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज़ सरकार यह मानने को तैयार नहीं है कि भारत के लोगों को अपने देश का शासन चलाने का अधिकार होना चाहिए। इसलिए भारत में साइमन जहां-जहां गया वहां उसके विरोध में जुलूस व हड़तालें हुईं और "साइमन वापस जाओ" का नारा ज़ोरों से गूंजा।

28-30 नवंबर 1928 को अवध के बड़े ज़मींदारों ने लखनऊ में साइमन के स्वागत में एक समारोह रखा। इसके विरोध में लखनऊ में कई जुलूस निकले। साइमन

मद्रास में साइमन कमीशन के खिलाफ जुलूस

का विरोध करने के लिए लोगों ने गुब्बारों पर लिखा 'साइमन वापस जाओ' और ये गुब्बारे समारोह स्थल के ऊपर उड़ाए।

इन विरोध प्रदर्शनों में बहुत लोग पुलिस द्वारा पीटे गए, जिनमें जवाहर लाल नेहरू भी थे।

1929 में कांग्रेस ने यह फैसला किया कि अब किसी भी हालत में अंग्रेज़ शासन के अंतर्गत नहीं रहना है। अब भारत के लोग पूर्ण स्वराज्य के लिए लड़ेंगे। इस लड़ाई के लिए गांधीजी ने नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू किया। यानी, देश के नागरिक खुल्लम खुला, पर शांतिपूर्ण ढंग से सरकार के कानून तोड़ेंगे।

इस आंदोलन की शुरुआत में गांधीजी ने नमक कानून तोड़ने का निर्णय लिया। अंग्रेज़ सरकार के कानून के अनुसार सिर्फ सरकार नमक बनवा के बेच सकती थी और लोगों से नमक पर कर भी वसूल करती थी। नमक पर कर देना एक ऐसी बात थी जो देश भर के छोटे-बड़े, सभी लोगों पर असर डालती थी। गांधीजी ने तय किया कि नागरिक अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत नमक कानून की अवज्ञा करके ही शुरू करनी चाहिए। उनके साथियों ने साबरमती आश्रम से गुजरात के समुद्र तट पर दांडी नाम की जगह तक पैदल यात्रा की और समुद्र तट पहुंच कर नमक बनाया।

इसके बाद देश में सैकड़ों जगहों पर लोगों द्वारा नमक बनाया गया। खास कर उन जगहों पर जो समुद्र के किनारे थी।

दूसरी जगहों पर सरकार के और कानून भी तोड़े गए। यह तय हुआ कि किसान सरकारी लगान नहीं चुकाएंगे। जिन क्षेत्रों में ज़मीदार थे, वहां किसानों से कहा गया कि वे ज़मीदार को लगान देते रहें पर सरकार उनसे जो चौकीदारी टैक्स लेती है वो देनें से मना कर दें।

मध्य भारत के इलाकों में, जहां जंगल बहुत थे, आदिवासियों और किसानों से जंगल कानून तोड़ने के लिए कहा गया।

एक बार फिर देश भर, गांव-गांव और छोटे-बड़े शहरों में आंदोलन की लहर चली। रायपुर, भंडारा, सिवनी, अमरावती, बैतूल में आदिवासियों और किसानों ने जंगल से बड़ी मात्रा में लकड़ी काटी।

दांडी में नमक उठाते हुए गांधीजी

उत्तर प्रदेश के किसानो ने चौकीदारी टैक्स चुकाने से इनकार तो किया ही पर साथ-साथ ज़मीदारों को बटाई देने से भी मना करने लगे।

महाराष्ट्र में शोलापुर की कपड़ा मिलों के मज़दूरों ने गांधीजी की गिरफ्तारी की खबर सुन कर 7 मई को हड़ताल कर दी। मज़दूरों की भीड़ ने विरोध प्रदर्शन के लिए जुलूस निकाले, शराब की दुकाने जलाई, पुलिस चौकियां, कचहरी और म्युनिसिपैल्टी की इमारतें और रेल्वे स्टेशन पर हमला किया। उन्होंने लगभग 7 दिन तक शोलापुर से अंग्रेज़ प्रशासन को उखाड़ फेंका और अपना अलग प्रशासन स्थापित किया जिसमें उन्होंने शहर के लोगो में से ज़िला मजिस्ट्रेट से लेकर थानेदार तक सब अधिकारी नियुक्त कर दिए।

उधर बंबई के व्यापारियों ने सबके सामने शपथ ली कि वे विदेशी कपड़ा नही बेचेंगे। विदेशी कपड़ो का बहिष्कार बड़े पैमाने पर हुआ। बंबई मे 1929-30 में 124 करोड़ गज़ विदेशी कपड़ा मंगाया गया था। बहिष्कार के चलते 1930-31 मे सिर्फ 52 करोड़ गज़ विदेशी कपड़ा मंगाया गया।

उन्ही दिनो कांग्रेस पार्टी ने तय किया था भारत का राष्ट्रीय झंडा कैसा होगा। जगह-जगह लोगों ने अंग्रेज़ सरकार का झंडा उतार कर भारत का राष्ट्रीय झंडा फहराने की कोशिश की। पुलिस लोगो को ऐसा करने से रोकती तो लोग पुलिस को चकमा दे कर झंडा फहरा के आते।

देश भर मे हज़ारों लोग गिरफ्तार हुए। कई बार जब उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाता और मजिस्ट्रेट उनसे कहता - "क्या आपको अपनी सफाई में कुछ कहना है?" तो लोग जवाब देते - "नही, हम अंग्रेज़ न्यायाधीश से कुछ नहीं कहना चाहते क्योंकि हम उसे न्यायाधीश स्वीकार ही नही करते।" फिर मजिस्ट्रेट सज़ा सुना देता और लोगों को कई महीनो की जेल हो जाती।

जन आंदोलन और समाजवादी विचार

अंग्रेज़ शासन के खिलाफ जब जनता आंदोलन करने लगी तो कुछ नए सवाल खड़े हो गए। जैसे, राष्ट्रीय आंदोलन मे सिर्फ अंग्रेज़ी हुकूमत से लड़ा जाए या ताकतवर भारतीयों से भी न्याय और समानता के लिए लड़ा जाए? क्या हिंसा बिलकुल अनुचित है?

आंदोलन की राह पर आम लोग कई ऐसी बातें करने लगे जो गांधीजी को गलत लगती थी। पहली बात यह थी कि लोग कई बार हिंसा का रास्ता अपनाने पर मज़बूर हो जाते थे। दूसरी बात यह कि लोग सिर्फ अंग्रेज़ों का विरोध करने की बजाय उन भारतीयों का भी विरोध करने लगे थे जिनसे वे दुखी और परेशान थे। जैसे, किसान अंग्रेज़ों से लगान रोकने के साथ-साथ ज़मीदारों को बटाई देना बंद करने लगते, व साहूकारों के बहीखाते जला देते। मिलों के मज़दूर काम रोककर हड़ताल पर निकल आते। चाय बागानों के मज़दूर बागान छोड़कर चले जाते। आदिवासी जंगल जलाने लगते और वन विभाग के अधिकारियों को मार भगाते। दूर-दराज़ के गांव-शहरों में बिखरे लोगों को यह बात समझ मे आई थी कि गांधीजी ने सत्य व न्याय के लिए लड़ने का आदेश दिया है और वे सब अपने-अपने हिसाब से सत्य व न्याय के लिए लड़ने निकल पड़ते। वे यह मानते थे कि वे गांधीजी के आदेश का ही पालन कर रहे हैं।

पर गांधीजी हिंसा के खिलाफ थे और वे यह भी नही चाहते थे कि ज़मीदारो, साहूकारों व मिल मालिकों के खिलाफ लोग आंदोलन करें। वे सोचते थे कि ये झगड़े आपसी प्रेमभाव से सुलझ जाने चाहिए। फिर वे सब लोगों का ध्यान अंग्रेज़ शासन से लड़ने में लगाए रखना चाहते थे और चाहते थे कि दूसरी समस्याएं स्वराज्य मिलने के बाद उठाई जाएं। इन विचारो के कारण गांधीजी ने कई बार लोगों के आंदोलन पर रोक

भगत सिंह

लगाने व सीमा में रखने की कोशिश की। चौरी-चौरा कांड के बाद असहयोग आंदोलन वापस लेना इसी का एक उदाहरण है।

इनसे कुछ हटकर समाजवादी लोगों के विचार थे। वे ऐसे आंदोलन का समर्थन कर रहे थे जो अंग्रेज़ों से भी न्याय दिलवाए और मिल मालिकों व ज़मींदारों से भी। 1925 में भारत में कम्युनिस्ट पार्टी बनी। कुछ साल कांग्रेस में भी कई समाजवादी लोगों ने काम किया पर बाद में वे कांग्रेस से अलग हो गए और अलग पार्टियां बनाई।

समाजवादी विचारों को रखने वाले कुछ लोगों के नाम ये हैं - एस.ए. डांगे, मुज़फ्फर अहमद, एम.एन. राय, भगत सिंह, सुभाषचंद्र बोस, जयप्रकाश नारायण आदि। इन लोगों का विचार बन रहा था कि किसानों और मज़दूरों के संगठन बनने चाहिए व उन्हें अंग्रेज़ों के अलावा ज़मींदारों, साहूकारों और मिल मालिकों के खिलाफ भी संघर्ष करना चाहिए ताकि स्वतंत्रता के बाद जो नया राष्ट्र बनेगा, वह मज़दूरों व किसानों का राष्ट्र हो। इन लोगों ने किसान सभाओं व मज़दूर संगठनों को राष्ट्रीय आंदोलन में अधिक स्थान देने की कोशिश की।

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन

1939 में दूसरा विश्व युद्ध शुरू हुआ। इंग्लैंड, फ्रांस और अमरीका मिलकर जर्मनी, जापान व इटली से लड़ रहे थे। इस युद्ध के लिए इंग्लैंड भारत के लोगों और धन का उपयोग करना चाहता था। इस मौके पर कांग्रेस ने आवाज़ उठाई कि युद्ध में भारत के सहयोग के बदले में उसे स्वराज्य मिलना चाहिए। पर अंग्रेज़ सरकार इस मांग को मानने को तैयार नहीं थी। जब स्थिति यहां तक पहुंची तो 1942 में गांधीजी ने "अंग्रेजों भारत छोड़ो" आंदोलन शुरू किया। गांधी, नेहरू व अन्य नेताओं को तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया। इससे लोग और भी भड़क गए। बड़ी संख्या में अंग्रेज़ सरकार के दफ्तर, कोर्ट-कचहरी, डाक घर, पुलिस थाने जलाए गए। शोलापुर, मद्रास और कलकत्ता में मज़दूरों ने विरोध ज़ाहिर करते हुए हड़ताल की और पुलिस से मुठभेड़ की। हज़ारों लोगों ने गिरफ्तारी दी।

सुभाष चंद्र बोस
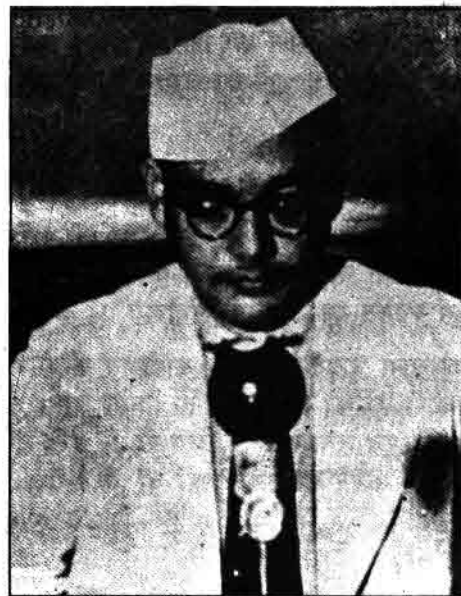
सुभाषचंद्र बोस ने बर्मा जाकर जापान की मदद से एक भारतीय सेना खड़ी की। और अपनी इस आज़ाद हिंद फौज के साथ दिल्ली की ओर कूच किया। उनका इरादा था कि इस सेना से अंग्रेज़ो को हराकर भगा दिया जाएगा।

1946 मे अंग्रेज़ सरकार की नौ-सेना मे भारतीय नौ-सैनिको ने बगावत कर दी। जगह-जगह हड़ताले हो रही थी। अपने राज्य के खिलाफ इतना ज़बरदस्त विद्रोह देख कर अंग्रेज शासक आखिर हार मानने लगे। वे दूसरे विश्व युद्ध के बाद कमज़ोर महसूस कर रहे थे। ऐसे मे भारत की विद्रोही जनता पर काबू पाना उन्हें बेहद कठिन लगा। इंग्लैंड मे जो लेबर पार्टी की सरकार थी वह भारत को स्वतंत्र करने को राज़ी हो गई। 15 अगस्त 1947 को भारत को अंग्रेज़ शासन से आज़ादी मिल गई।

भारत-पाकिस्तान विभाजन

स्वतंत्रता का अवसर जैसे पास आया, वैसे हिंदू और मुसलमान संप्रदायवादी लोग अपने-अपने हितो के लिए बुरी तरह अड़ गए। इस हालत में 1940 मे मुस्लिम लीग नामक संगठन ने मांग की कि मुसलमानो को अपना अलग राष्ट्र मिलना चाहिए, चूंकि भारत मे उन पर हिंदुओं का प्रभुत्व रहेगा और वे विकास नही कर पाएंगे। अलग राष्ट्र पाकिस्तान की मांग को लेकर मुस्लिम लीग ने लोगों के बीच आंदोलन छेड़े। जगह-जगह हिंदुओं और मुसलमानों के बीच भयंकर दंगे होने लगे।

अंग्रेज़ो ने भारत का विभाजन करके पाकिस्तान के नाम से अलग राष्ट्र बनाया। पाकिस्तान में रहने वाले कई हिंदू भारत आने लगे और भारत में रहने वाले कई मुसलमान पाकिस्तान जाने लगे। पर अनेको हिंदू-मुसलमान अपनी पुरानी जगहो पर ही रहे। उन

मोहम्मद अली जिन्नाह

दिनो हिंदू और मुसलमानो के बीच बहुत मार-काट मच गई व एक-दूसरे के प्रति बहुत भय और घृणा फैलाई गई। गांधीजी यह सब स्वीकार करने को तैयार नही थे। 77 वर्ष की बूढ़ी उम्र में वे भयानक दंगों के बीच लोगो को समझाने-बुझाने चल दिए। उन्होंने कहा, "मैं अपनी जान की बाज़ी लगा दूंगा पर यह नही होने दूंगा कि भारत मे मुसलमान लोग रेंग कर जिएं। उन्हें आत्म-सम्मान के साथ चलना है।"

वे इस सिद्धांत पर अडिग थे कि भारत मे हिंदू और मुसलमान, दोनो के लिए बराबर जगह है। यह बात हिंदू संप्रदायवादी नही मानते थे। वे चाहते थे कि भारत मे हिंदू लोगो को प्रमुख स्थान मिले। उनमे से एक नाथूराम गोडसे ने 30 जनवरी 1948 को गांधीजी की गोली मारकर हत्या कर दी। भारत का विभाजन क्यो और कैसे हुआ यह एक बहुत दुखद और कठिन कहानी है जिसके बारे मे तुम आगे की कक्षाओं मे पढ़ोगे।

राजा-महाराजाओं के शासन की समाप्ति

तुम जानते हो कि अंग्रेज़ो के शासन के अलावा भारत के कई हिस्सों मे राजा-महाराजाओं का शासन

भी था। भारत में 562 ऐसे छोटे-बड़े राज्य थे। वे अंग्रेज़ों की अधीनता तो मानते थे पर जब अंग्रेज़ भारत छोड़ कर जाने लगे तो राजाओं ने चाहा कि वे अपना-अपना स्वतंत्र राज्य अलग चलाएं। लेकिन इन रजवाड़ों में भी कई सालों से आम लोगों के आंदोलन चल रहे थे जो चाहते थे कि राजाओं, ज़मीदारों, जागीरदारों का शासन खत्म हो। वे भी लोगों द्वारा चुनी गई सरकार व लोगों के अधिकारों की मांग कर रहे थे। वे भारत राष्ट्र का हिस्सा बनना चाहते थे।

जवाहरलाल नेहरू और वल्लभाई पटेल

1947-48 में भारत की नई स्वतंत्र सरकार ने इन छोटे-बड़े रजवाड़ों को भारत में मिलाया। जो राजा नहीं माने, उनके राज्य में सेना भेज कर यह काम पूरा किया गया। राजाओं, नवाबों को हटाकर पेंशन दे दी गई। इस पेंशन को प्रिवी-पर्स कहा जाता था। राजाओं से ये समझौते करवाने का काम मुख्य रूप से सरदार वल्लभ भाई पटेल ने पूरा किया। इस तरह आज के भारत के सब हिस्से एक राष्ट्र के अंतर्गत आए।

कई सालों बाद, 1971 में राजाओं के प्रिवी-पर्स खत्म कर दिए गए।

देश आज़ाद हुआ और एक नया राष्ट्र बना। लंबे समय से चले आ रहे कई संघर्ष सफल हुए और अपनी मंज़िल पर पहुंचे। पर अनेकों लोगों के संघर्ष और सपने 1947 में भी पूरे नहीं हुए। उनके प्रयत्न स्वतंत्रता के बाद भी जारी हैं।

o o o o

अभ्यास के प्रश्न

1. नीचे लिखे हुए आंदोलनों का क्या मतलब था और उनमें लोग किस तरह भाग लेते थे -
   (क) बहिष्कार
   (ख) स्वदेशी
   (ग) असहयोग
   (घ) नागरिक अवज्ञा आंदोलन
2. गांधीजी के सत्याग्रह कार्यक्रम में हिंसात्मक कामों पर पाबंदी क्यों थी?
3. आम जनता के आंदोलनों के बारे में गांधीजी और समाजवादियों के विचारों में क्या फर्क था?
4. गांधीजी की हत्या किन कारणों से हुई?
5. स्वतंत्र भारत में पुराने राजाओं को क्या स्थान दिया गया?